सद्गुरवे नमः

महाभारत मीमांसा

आठवां : कर्ण पर्व

. शल्य और कर्ण की तू-तू मैं-मैं तथा मद्रदेश की निंदा

अश्वथामा ने प्रस्ताव रखा कि कर्ण को सेनापति बनाया जाय। दुर्योधन ने कर्ण का सेनापति के पद पर अभिषेक कर दिया। इसके बाद कौरव-सेना ने मकर व्यूह का निर्माण किया और पांडव-सेना ने अर्धचंद्राकर व्यूह का निर्माण किया और दोनों तरफ से सोलहवें दिन का युद्ध शुरू हुआ। घोर युद्ध चल पड़ा। भीम ने क्षेमधूर्ति को मार गिराया। अश्वत्थामा ने भीम पर आक्रमण किया। अंततः दोनों दोनों के बाणों से मूर्च्छित हो गये। अर्जुन ने अश्वत्थामा को पराजित किया। अश्वत्थामा ने पांड्य नरेश को मार गिराया। सहदेव ने दुःशासन को पराजित किया। कर्ण ने नकुल को हरा दिया। पांचाल-सेना का भयंकर संहार हुआ। शकुनि ने पांडव-सेना का विनाश किया। युद्ध में कृपाचार्य से धृष्टद्युम्न को भय हुआ। युधिष्ठिर और दुर्योधन युद्ध में भिड़ गये। दुर्योधन पराजित हो गये और दोनों सेनाओं में मर्यादा-विरुद्ध युद्ध छिड़ गया।

कौरव-सेना में उदासी छा गयी। रात में मंत्रणा हुई। कर्ण ने कहा–अर्जुन सावधान, दृढ़, चतुर और धैर्यवान हैं। साथ में रहने वाले श्रीकृष्ण उनको कर्तव्य का ज्ञान कराते हैं। उन्होंने युद्ध में आज हमें ठग लिया; परंतु कल हम उनके मनसूबे ध्वस्त कर देंगे। दुर्योधन ने 'तथास्तु' कहकर कर्ण को प्रोत्साहित किया। सब अपने-अपने शिविर में विश्राम करने चले गये।

धृतराष्ट्र ने कहा–निरंतर हमारी सेना कट रही है और हमारी हार हो रही है। यह भाग्य का ही दोष है। संजय ने कहा–राजन! पहले की जुआ खेलने की घटना याद कीजिए। उसी का परिणाम आज आप भोग रहे हैं। पहले भूल करके पीछे चिंता करने से काम बनने वाला नहीं है। पांडवों के राज्य का अपहरण

बहुत बुरी बात हुई। इस पर आपने विचार नहीं किया। आपने पांडवों के साथ भयंकर अत्याचार किया है। उसी का परिणाम आज सामने है।

रात बीतने पर कर्ण ने आकर दुर्योधन से कहा–आज मैं अर्जुन को मारूंगा अथवा उनके हाथों स्वयं मर जाऊंगा। आज हमारा उनका सीधा युद्ध होगा। आज मैं अर्जुन को मारे बिना नहीं लौटूंगा।

दुर्योधन ने मद्र-नरेश शल्य से कहा कि आप कर्ण का सारथि बनें। शल्य ने दुर्योधन से कहा–आप मेरा अपमान कर रहे हैं। कर्ण को मुझसे अधिक बली मान रहे हैं। मैं आपसे आज्ञा चाहता हूं। मैं आज ही अपने घर लौट जाऊंगा। ऐसा कहकर शल्य सभा से उठकर चल दिये। दुर्योधन ने तुरंत शल्य से कहा–आप निश्चित ही महान वीर हैं। न तो कर्ण आपसे श्रेष्ठ हैं और न मैं आप पर संदेह करता हूं। आप तो युद्ध में शत्रुओं के लिए शल्य (कांटे) के समान हैं, इसीलिए आपका नाम शल्य है। मैं अर्जुन से कर्ण को अधिक बलवान मानता हूं और सारा संसार ही श्रीकृष्ण से आपको श्रेष्ठ मानता है। कर्ण तो अर्जुन से केवल अस्त्र-शस्त्र ज्ञान में बढ़ा-चढ़ा है, किंतु आप श्रीकृष्ण से अश्वविद्या और बल दोनों में बढ़े-चढ़े हैं।

शल्य ने कहा–दुर्योधन! तुमने जो सभा के बीच में मुझे कृष्ण से बढ़ा-चढ़ा कहा, इससे मैं प्रसन्न हूं और कर्ण का सारथि बनूंगा। परंतु कर्ण के साथ मेरी एक शर्त रहेगी, वह, यह है "मैं उनसे अपनी इच्छा के अनुसार बातें कर सकता हूं।" कर्ण ने शल्य की शर्त स्वीकार ली।

दुर्योधन ने शल्य को एक पुराना उपाख्यान सुनाया कि त्रिपुरासुर से लड़ने के लिए महादेव ने जिस रथ का प्रयोग किया था, उसका सारथि स्वयं ब्रह्माजी बने। इसलिए सारथि-पद छोटा नहीं है। दुर्योधन की इस बात से शल्य और प्रसन्न होकर कर्ण का सारथि बनने के लिए तैयार हो गये।

कर्ण युद्ध के लिए तैयार हुए और शल्य ने उनका रथ हांका। दुर्योधन ने कर्ण से कहा–तुम युधिष्ठिर को कैद करके ले आओ अथवा अर्जुन, भीम, नकुल तथा सहदेव को मार डालो। कर्ण ने शल्य से कहा–मेरे रथ को बढ़ाइए जिससे मैं पांचों पांडवों को मार गिराऊं। शल्य ने कहा–पांडवों को जीतना संभव नहीं है। वे अजेय हैं। जब पांडवों का युद्ध में तेज देखोगे तब ऐसा नहीं कह सकोगे। कर्ण ने कहा–चलो, हांको। उसने अपनी प्रशंसा की कि द्रोणाचार्य के मारे जाने के बाद कौरव निराश हैं। अब मैं ही पांडवों को ठिकाने पहुंचाकर कौरवों के मन में आशा के दीप जला सकता हूं। यदि यम, वरुण, कुबेर और

इंद्र भी अर्जुन का सहयोग करें तो भी मैं उनके सहित अर्जुन पर विजय कर लूंगा।

शल्य ने कहा–बस, बस, कर्ण! बड़बड़ाना बंद करो। तुम अधिक भावुक होकर अपनी शक्ति से अधिक बातें कर रहे हो। कहां श्रेष्ठ अर्जुन और कहां अधम तुम! इसके बाद शल्य ने कर्ण की अनेक कमियां बतायीं।

कर्ण ने पांडवों के सैनिकों से कहा–अर्जुन कहां हैं? जो उनका पता बतायेगा, उसको मैं अतुल धन दूंगा। इस बात को कर्ण ने अनेक बार दोहराया। तब शल्य ने कहा–कर्ण! तुम किसी मनुष्य को हाथी के समान बलवान छह बैलों से जुता हुआ सोने का रथ न दो। तुम आज स्वाभाविक ढंग से अर्जुन को देखोगे। कर्ण! तुम मूर्खता से कुबेर बने धन लुटा रहे हो। तुम स्वयं रण में अर्जुन को देखोगे। तुम मोहवश श्रीकृष्ण और अर्जुन को मारना चाहते हो। क्या गीदड़ सिंह को मार सकता है? तुम अन्होंन चीज चाहते हो। तुम्हारा कोई मित्र नहीं है जो तुम्हें जलती आग में गिरते बचा ले? तुम्हें कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान नहीं है। निस्संदेह तुम्हें काल ने पका दिया है। इसी से तुम ऊटपटांग बात करते हो। तुम गले में पत्थर बांधकर समुद्र तैरना चाहते हो, पर्वत से कूदकर सुरक्षित रहना चाहते हो।

कर्ण ने कहा–शल्य! मैं अपने बाहुबल से रणक्षेत्र में अर्जुन से भिड़ना चाहता हूं; परंतु तुम मित्र के रूप में शत्रु हो जो मुझे डराना चाहते हो। किंतु मैं अडिग हूं।

शल्य ने कहा–कर्ण! जब अर्जुन के बाण तुम्हारे शरीर में घुसेंगे तब तुम पश्चाताप करोगे। जैसे शिशु चंद्रमा को पकड़ने की मूर्खता करे, वैसे तुम अर्जुन को मारना चाहते हो। कर्ण! तुम मूर्ख हो। सर्प गरुड से लड़ना चाहे तो अपने को नष्ट करेगा।

कर्ण ने कहा–शल्य! तुम कटुवचन रूपी शल्य (बाण) छोड़ने के कारण शल्य कहलाते हो क्या? गुणवान ही किसी के गुण को समझ सकता है। तुम तो गुणहीन हो, फिर तुम किसी के गुण को क्या समझोगे? मैं श्रीकृष्ण और अर्जुन के बल को जानकर ही उनसे युद्ध करना चाहता हूं। तुम उन फुफेरे और ममेरे भाइयों को मेरे बाणों से मरे हुए देखोगे। शल्य! तुम दुष्ट स्वभाव के मूर्ख मनुष्य हो, इसीलिए मुझे भय दिखा रहे हो। तुम पापी देश में पैदा हुए हो। इसलिए तुम्हारी बुद्धि भी मलिन है। मैं कृष्ण और अर्जुन को मारकर तुम्हें भी मार डालूंगा। तुम मुझे उनसे डरा रहे हो। आज मैं उन्हें मार डालूंगा, या वे मुझे मार डालेंगे। मैं अपने बल को जानता हूं। मैं कृष्ण और अर्जुन से नहीं डरता

हूं। नीच देश में पैदा हुए शल्य! तुम चुप रहो, मैं अकेला ही हजारों कृष्ण और अर्जुन को मार सकता हूं।

कर्ण ने आगे कहा–शल्य! मद्रदेश गंदा है। उसकी गंदगी स्त्रियां, बच्चे, बूढ़े, खेल-कूद वाले, स्वाध्यायशील सभी कहते हैं। घूमने वाले ब्राह्मण मद्र निवासी लोगों की गंदगी राजाओं के सामने जो सुनाते हैं, उन्हें तुम ध्यान देकर सुनो। सुनकर चुपचाप सह लो अथवा उत्तर दो। मद्रदेश का मनुष्य अधम और मित्रद्रोही होता है। वे क्षुद्र बात करते हैं। वे किसी के साथ सहृदय होकर बरताव करना नहीं जानते। मद्रदेश के लोग दुरात्मा, झूठ बोलने वाले, कुटिल तथा मरते दम तक कुटिल ही रहते हैं। मद्रदेश में पिता, पुत्र, माता, सास, ससुर, मामा, बेटी, दामाद, भाई, नाती, पोते, अन्य बंधु-बांधव, समान उम्र के मित्र, अभ्यागत, अतिथि, दास-दासी, ये सब एक दूसरे से मिलते हैं, सत्तू खाते, शराब पीते, गोमांस खाते, मदिरा पीकर रोते, हंसते, गाते, असंगत बातें करते और किसी स्त्री से कोई भी पुरुष समागम करते हैं। सभी स्त्री-पुरुष कामुक होकर बात करते हैं। इनके पाप-कर्म प्रसिद्ध हैं। ऐसे घमंडी मद्र निवासियों में धर्म कैसे रह सकता है? शल्य! तुम भी तो नीच देश मद्र के निवासी हो। अतएव मद्रदेश के निवासियों से प्रेम और वैर करना गलत है, क्योंकि उनमें सौहार्द्र भावना नहीं होती। मद्र निवासी सदैव पाप में ही डूबे रहते हैं।

ओ बिच्छू शल्य! मद्रदेश के लोगों के पास रखी धरोहर नष्ट हो जाती है और गांधार देश के निवासियों में शौचाचार नष्ट है। मद्रदेश के निवासियों से मित्रता करने वाला नष्ट हो जाता है। ओ शल्य! मैंने तेरे विष को अथर्ववेद के मंत्र से नष्ट कर दिया है।

विद्वान राजा शल्य! चुपचाप होकर मेरी बातें सुनते जाओ। मद्रदेश की स्त्रियां मदिरा पीकर उन्मत्त होती हैं। वे कपड़े उतारकर नाचती हैं और किसी भी पुरुष से संभोग करती हैं। उनके पुत्र मद्रनिवासी नराधम दूसरों को कौन-सा धर्मोपदेश कर सकते हैं? जो ऊंटों और गदहों के समान खड़ी-खड़ी मूतती हैं और धर्म से भ्रष्ट तथा निर्लज्ज हैं, वैसी मद्र-निवासी स्त्रियों के पुत्र होकर तुम यहां मुझे धर्म का उपदेश सुनाने आये हो! मद्रदेश की स्त्रियां प्रायः गोरी, लंबी, निर्लज्ज, कंबल ओढ़ने वाली, बहुत खाने वाली, और अत्यंत अपवित्र होती हैं, ऐसा मैंने सुना है। यदि उनसे कोई कांजी मांगे तो वे उसकी कमर पकड़कर खींच ले जाती हैं और कहती हैं कि कोई मुझसे कांजी न मांगे, क्योंकि वह मुझे अत्यंत प्रिय है। मैं अपने पुत्र को दे दूंगी, पति को दे दूंगी, किंतु कांजी नहीं दूंगी। मद्रदेश के लोग सिर से पैर तक निंदनीय हैं।

. शल्य और कर्ण की तू-तू मैं-मैं तथा मद्रदेश की निंदा

मद्र तथा सिंध-सौवीर के लोग पापपूर्ण देश में पैदा हुए म्लेच्छ हैं। वे धर्म-कर्म से हीन हैं। वे धर्म की बातें कैसे समझ सकते हैं? मैं मित्र दुर्योधन का काम बनाने के लिए समर्पित हूं। कोई मुझे डरा नहीं सकता। लगता है कि पांडवों ने तुम्हें हमारे पास हमारा भेद लेने भेजा है। जैसे सैकड़ों नास्तिक मिलकर धर्मज्ञ मनुष्य को विचलित नहीं कर सकते, वैसे तुम मुझे मेरे निश्चय से हटा नहीं सकते। तुम चाहे धूप से तपित हिरण की तरह विलाप करो और चाहे सूख जाओ, परंतु मुझे विचलित नहीं कर सकते। क्षत्रिय-धर्म है शत्रु को मार गिराना अथवा उसके हाथों से स्वयं मरकर रण क्षेत्र में सो जाना। मुझे कोई मेरे निश्चय से विचलित नहीं कर सकता। अतएव समझदार शल्य! तुम चुपचाप बैठे रहो। भयभीत होकर बड़बड़ाते क्यों हो? मद्रदेश के पतित शल्य! यदि तुम चुप नहीं हुए, तो मैं तुम्हें मार-काट कर मांस-भक्षी जानवरों को खिला दूंगा।

शल्य! मैं दुर्योधन का काम बनाना चाहता हूं, दूसरी बात है कि मैं निंदा से डरता हूं और तीसरी बात है कि तुम्हारी बातों के लिए क्षमा करने का व्रत ले रखा हूं, इसीलिए तुम जीवित हो। मद्रराज! यदि बुरी बात कहोगे तो मैं तुम्हें अपनी गदा से मारकर चूर-चूर कर दूंगा। याद रखो, आज यहां देखने और सुनने वाले देखेंगे और सुनेंगे कि कर्ण ने कृष्ण और अर्जुन को मार डाला या कृष्ण और अर्जुन ने कर्ण को मार डाला। अंततः बिना घबराहट के कर्ण ने शल्य से कहा—मद्रराज शल्य रथ हांको, चलो, चलो।

शल्य ने कहा—कर्ण! मैं युद्ध में पीठ न दिखाने वाले नरेशों के कुल में पैदा हुआ हूं। मैं धर्म में तत्पर हूं। परंतु मदिरा पीकर उन्मत्त हुए के समान तुम हो, इसलिए मैं तुम्हारी आज चिकित्सा करूंगा। कर्ण! मैं तुम्हें एक कहानी के माध्यम से समझाना चाहता हूं। एक बनिया के बच्चे एक कौए को अपने जूठन खिला-खिलाकर पाल रखे थे। वहां हंस आये, तो कौए ने कहा—मैं एक सौ एक उड़ान जानता हूं, तुम कितनी उड़ान जानते हो? हंस ने कहा—मैं तो एक ही उड़ान जानता हूं। कौआ अहंकार में भरकर उड़ा और अपनी उड़ने की कला दिखाने लगा और हंस से कहा—मेरे समान उड़ो। हंस उड़कर आकाश में गया। कौआ थोड़ी उड़ान में थककर समुद्र के पानी के पास पहुंच गया और उसके डूबने की नौबत आ गयी। तब उसने गोहार लगाकर हंस की शरण ली, तो हंस ने कौए के पास जाकर उसे अपनी पीठ पर रखकर थल में लाकर उतार दिया। फिर कौए का घमंड दूर हो गया। हे कर्ण! तू कौरवों के जूठन खाकर अपनी डींग हांकता है, परंतु तू अर्जुन और श्रीकृष्ण का सामना नहीं कर सकता;

अतएव अपना कुशल चाहो तो उनकी शरण में जाकर समझौता कर लो।

कर्ण ने कहा–मैं श्रीकृष्ण और अर्जुन का बल जानता हूं, तो भी मैं उनसे युद्ध करूंगा। शल्य! तुमने कौआ और हंस के दृष्टांत से वाग्जाल फैलाया है, उससे मैं नहीं डर सकता। इंद्र भी सामने आवें तो मैं नहीं डर सकता। यदि तुम्हें डराने की आदत है, तो किसी डरपोक का पता लगाकर उसे डराओ। तुम मेरे गुणों को न कहकर बहुत-सी ऊपटांग बातें बकते जा रहे हो। मैंने पहले ही यह शर्त स्वीकार ली है कि तुम्हारे अप्रिय वचनों को क्षमा करूंगा। वैसे हजारों शल्य न रहें तो भी मैं शत्रु को जीत सकता हूं।

शल्य ने कहा–कर्ण! तुम्हारा आक्षेप प्रलाप मात्र है। हजार कर्ण न रहें तो भी शत्रु पर विजय पायी जा सकती है।

कर्ण ने कहा–मद्रनरेश! मेरी बातें सुनो। राजा धृतराष्ट्र के पास लोगों ने जो बातें कहीं हैं उसे मैंने सुना है। एक दिन राजा धृतराष्ट्र के दरबार में कुछ ब्राह्मण आकर नाना देशों की बातें बताने लगा। उसमें से एक बूढ़े ब्राह्मण ने कहा था–जो हिमालय, गंगा, यमुना, सरस्वती तथा कुरुक्षेत्र से बाहर के देश हैं और जो सतलज, व्यास, रावी, चिनाब, झेलम तथा सिंधु नदी के बीच में स्थित देश हैं, उन्हें बाहीक कहते हैं। वे धर्म बाह्य तथा अपवित्र हैं। उन्हें त्याग देना चाहिए। गोबर्धन नाम के वटवृक्ष तथा सुभद्र नाम का चबूतरा वहां के राजभवन के द्वार पर स्थित हैं, जिन्हें मैं बचपन से नहीं भूल पाता हूं।

बूढ़े ब्राह्मण ने आगे कहा–मैं एक गुप्त कार्यवश कुछ दिन बाहीक देश में रहा। इसलिए वहां के मनुष्यों के आचार-व्यवहार को जाना था। वहां शाकल नाम का एक नगर तथा आपागा नाम की एक नदी है। वहां जार्तिक नाम वाले बाहीक निवास करते हैं। उनका चरित्र अत्यंत निंदनीय है। वे भुने हुए जौ और लहसुन के साथ गोमांस खाते हैं और गुड़ से बनी हुई मदिरा पीकर मतवाले बने रहते हैं। पूआ, मांस और बाटी खाने वाले बाहीक देश के लोग शील और आचरण से शून्य होते हैं। वहां की स्त्रियां माला पहने तथा अंगराग धारण किये हुए नगर एवं घरों की चहारदीवारों के पास नंगी होकर नाचती हैं। वे अनेक प्रकार के गीत गाती हुई गधों के चिघ्घारने तथा ऊंटों के समान बलबलाने जैसी आवाजें करती हैं। वे स्त्रियां खुली जगहों में मनमाना पुरुषों से यौनाचार करती हैं। वे सब स्वेच्छाचारिणी होती हैं। वे मद में उन्मत्त होकर आपस में विनोदयुत बात करती हैं–'ओ घायल की हुई! ओ किसी की मारी हुई! हे पति-मर्दिते!' इस प्रकार कहकर पुकारती हुई नाचती हैं। पर्वों और त्योहारों के समय तो इन

स्त्रियों के संयम का बांध ही टूट जाता है।

उन्हीं बाहीक देश की मदमत्त एवं दुष्ट स्त्रियों का संबंधी आकर कुरु जांगल प्रदेश में निवास करता था। वह दुखी होकर गुनगुनाया करता था–"वह लंबी, गोरी, महीन कंबल की साड़ी पहनने वाली मेरी प्रेयसी कुरु जांगल प्रदेश में निवास करने वाले मुझ बाहीक को सदा याद करती हुई सोती होगी। मैं कब उस सतलज तथा रमणीय रावी नदी को पारकर और अपने देश में पहुंचकर शंख की बनी हुई मोटी-मोटी चूड़ियों को धारण करने वाली वहां की सुंदरी स्त्रियों को देखूंगा। जिनके नेत्रों के कोर मैनसिल के आलेप से उज्ज्वल हैं, दोनों नेत्र और मस्तक अंजन से शोभायमान हैं और उनके सारे अंग कंबल तथा मृगचर्म से ढके हैं, वे गोरी सुंदरी रमणियां मृदंग, ढोल, शंख तथा मर्दल आदि बाजों की ध्वनि के साथ कब नाचती हुई दिखायी देंगी? कब हम मद पीकर उन्मत्त हो गधे, ऊंट और खच्चरों पर चढ़कर सुंदर मार्गों वाले शमी, पीलु और करीलों के जंगलों में घूमेंगे! रास्ते में मट्ठा, सत्तू और पूए खाकर उन्मत्त होकर कब राहगीरों को लूटकर उनके कपड़े छीनेंगे और उन्हें पीटेंगे।" दुरात्मा बाहीक ऐसे ही संस्कार-शून्य होते हैं। कौन समझदार मनुष्य उनके साथ दो घड़ी भी निवास करेगा? ऐसे पतित बाहीकों के पुण्य या पाप का छठां भाग तुम लिया करते हो।

शल्य! उन श्रेष्ठ ब्राह्मण ने बाहीकों के विषय में और भी कहा–उस देश में एक राक्षसी रहती है जो कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को संपन्न शाकल नगर में रात के समय दुंदुभि बजाकर इस प्रकार गाती है–मैं गहने-कपड़ों से सजकर और गोमांस खाकर तथा गुड़ से बनी मदिरा पीकर तृप्त हो अंजुली भर प्याज के साथ बहुत से भेड़ों को खाती हुई गोरे रंग की लंबी युवतियों के साथ मिलकर इस शाकलनगर में पुनः कब इस प्रकार की बाहीक संबंधी गाथाओं का गायन करूंगी? जो सुअर, मुरगा, गाय, गधा, ऊंट और भेड़ के मांस नहीं खाता है उसका जीवन व्यर्थ है। शाकल निवासी नर-नारी मदिरा पीकर तथा उन्मत्त हो ऐसी गाथाएं गाते रहते हैं, उनमें धर्म कैसे रह सकता है? शल्य! इन बातों को समझो। दूसरे ब्राह्मण ने जो बताया है, उसे भी सुन लो–जहां शतद्रु (सतलज), विपासा (व्यास), इरावती (रावी), चंद्रभागा (चिनाब), वितस्ता (झेलम) तथा सिंध नदी बहती हैं, जहां पीलु नामक वृक्षों के अनेक जंगल हैं; वे हिमालय की सीमा के बाहर के प्रदेश 'आरट्ट' नाम से जाने जाते हैं; वहां के धर्म-कर्म नष्ट हो गये हैं। अतएव इन देशों में कभी नहीं जाना चाहिए। ये धर्म-कर्म-हीन जारज बाहीक यज्ञ-कर्म से रहित हैं। उनके दिये हुए धन को देवता, पितर और

ब्राह्मण नहीं लेते हैं, यह बात जानने में आयी है।

किसी विद्वान ब्राह्मण ने यह भी बताया था कि बाहीक देश के लोग काठ के कुंडों तथा मिट्टी के बरतनों में जहां सत्तू और मदिरा लिपटे होते हैं और जिन्हें कुत्ते चाटते रहते हैं, उनमें प्रसन्न होकर भोजन करते हैं। बाहीक देश के निवासी भेड़, उंटनी और गधी के दूध पीते और उसके दूध से बने दही-घी खाते हैं। वे जारज-पुत्र उत्पन्न करने वाले नीच आरट्ट नामक बाहीक सबका अन्न खाते हैं और सब पशुओं का दूध पीते हैं। इसलिए समझदार लोग उन्हें दूर से त्याग दें।

शल्य! इन बातों को याद कर लो। अभी मैं तुमसे उनके विषय में और बातें भी बताऊंगा जिन्हें एक ब्राह्मण ने मुझसे ही कहा था। युगंधर नगर में दूध पीकर, अच्युत स्थल नामक नगर में एक रात रहकर तथा भूतिलय में स्नान करके मनुष्य स्वर्ग में कैसे जायगा? जहां पर्वत से निकलकर उपर्युक्त पांचों नदियां बहती हैं, वे आरट्ट नाम से बाहीक देश हैं। उनमें अच्छा आदमी दो दिन भी न रहे। विपाशा (व्यास) नदी में दो पिशाच रहते हैं; एक का नाम है 'बहि' और दूसरे का नाम है 'हीक'। इन्हीं दोनों की संतानें बाहीक कहलाती हैं। इनकी सृष्टि ब्रह्मा ने नहीं की है। ये नीच योनि में उत्पन्न मनुष्य धर्म का तत्त्व क्या जानेंगे? कारस्कर, माहिषक, कुरंड, केरल, कर्कोट और वीरक देशों के धर्म एवं आचार-विचार दूषित हैं। अतएव इन देशों का त्याग कर दे। विशाल ओखलियों का मेखला धारण करने वाली एक राक्षसी ने किसी से कहा था—जहां ब्रह्मा जी के समकालीन वेद-विरुद्ध आचरण करने वाले नीच ब्राह्मण निवास करते हैं, वे आरट्ट नामक देश हैं और वहां के जल का नाम बाहीक है। उन अधम ब्राह्मणों को न वेदों का ज्ञान है, न उनके यहां यज्ञ की वेदियां हैं और न उनके यहां यज्ञ होते हैं। वे संस्कारहीन तथा दासों से समागम करने वाली कुलटा स्त्रियों की संतानें हैं, इसलिए उनका अन्न देवता नहीं ग्रहण करते। प्रस्थल मद्र, गांधार, आरट्ट, खस, वसाति, सिंधु और सौवीर देश अत्यंत निंदनीय हैं।

कर्ण ने पुनः कहा—शल्य! और सुनो। एक समय एक ब्राह्मण मेरे घर पर ठहरा। उसने हमारे यहां का आचार-विचार देखकर प्रसन्नता व्यक्त की और कहा—मैंने बहुत-से देश देखे हैं, वहां के लोग अच्छे हैं। वेदानुकूल चलते हैं। जब मैं बाहीक देश में पहुंचा, तो वहां देखा कि एक ही बाहीक पहले ब्राह्मण होकर, फिर क्षत्रिय हो जाता है। फिर वही वैश्य और पुनः शूद्र हो जाता है। वही नाई होकर पुनः ब्राह्मण हो जाता है। ब्राह्मण होने के बाद वही दास हो जाता है। वहां एक ही कुल में कोई ब्राह्मण है और कोई स्वेच्छाचारी बनकर वर्णसंकर संतान पैदा करने वाला है। गांधार, मद्र और बाहीक देश में लोग

मंदबुद्धि के हुआ करते हैं। सारी पृथ्वी पर घूमकर मुझे केवल बाहीक देश में धर्म के विपरीत आचरण देखने को मिला।

शल्य! ये बातें जान लो। अभी और कहता हूं, सुनो! एक दूसरे यात्री ने भी बाहीक देश की गंदी बातें बतायी थीं। कहते हैं, प्राचीन काल में लुटेरे डाकुओं ने आरट्ट देश से एक सती स्त्री का अपहरण कर लाया और उसके साथ उन्होंने दुराचार किया। तब उसने उन्हें शाप दिया–मैं अभी कुमारी हूं, मेरे भाई-बंधु विद्यमान हैं, तो भी तुम लोगों ने मेरे साथ दुराचार किया। अतएव इस कुल में सारी स्त्रियां व्यभिचारिणी होंगी। पापियो! तुम्हारा इस घोर पाप से कभी छुटकारा नहीं होगा। इसलिए उनके धन के अधिकारी भानजे होते हैं, पुत्र नहीं– *"तस्मात् तेषां भागहरा भागिनेया न सूनवः* (कर्ण पर्व, ,)।

कुरु, पांचाल, शल्य, मत्स्य, नैमिष, कोसल, काशी, अंग, कलिंग, मगध और चेदिदेश के भाग्यवान लोग शाश्वत धर्म को समझते हैं। विभिन्न देशों में प्रायः श्रेष्ठ लोग मिलते हैं। केवल बाहीक देश के लोग भ्रष्ट हैं। मत्स्य से कुरु-पांचाल देश तक तथा नैमिषारण्य से चेदिदेश तक जो लोग रहते हैं, वे सभी उत्तम एवं साधु हैं। वे पुराने धर्म के अनुसार चलते हैं। मद्र और पंचनद (पंजाब) देश के लोगों में धर्म नहीं हैं। वे कुटिल हैं।

राजा शल्य! उक्त बात समझकर तुम जड़ बनकर बैठे रहो, धर्मोपदेश न करो। तुम बाहीक देश के राजा और रक्षक हो, इसलिए उनके पाप-पुण्य का छठां भाग तुम पर आता है। यह भी कहा जा सकता है कि तुम उन्हें धर्म के मार्ग पर नहीं लगा पाते हो, इसलिए तुम्हें उनके केवल पाप का ही भाग मिलता है। जो राजा प्रजा को सन्मार्ग में लगाये, वह उनके पुण्य में भाग पाता है। तुम तो केवल पाप के भागी हो। पहले जब शाश्वत धर्म की प्रशंसा की जा रही थी, उस समय ब्रह्मा जी ने पंचनद (पंजाब) वासियों के घृणित आचरण देखकर कहा था–'धिक्कार है इन्हें।'

जब सत्युग में ही ब्रह्माजी ने संस्कारहीन, जारज तथा पापकर्मी पंचनद वासियों की निंदा की है, तब तुम उसी देश के वासी होकर क्यों धर्मोपदेश करने चले हो? शल्य! तुम इन बातों को समझो। इस विषय में अभी मैं तुम्हें और बातें बता रहा हूं जिन्हें सरोवर में डूबते हुए राक्षस कल्माषपाद ने कहा था– "क्षत्रिय का मल भिक्षावृत्ति है, ब्राह्मण का मल श्रुतिविरुद्ध आचण है, पृथ्वी के मल बाहीक हैं और स्त्रियों का मल मद्रदेश की स्त्रियां हैं। (इतना ही नहीं) मनुष्यों के मल म्लेच्छ हैं, म्लेच्छों के मल शराब बेचने वाले हैं, शराब बेचने

वालों के मल हिजड़े हैं और हिजड़ों के मल हैं राजपुरोहित।"

राजपुरोहितों के पुरोहितों और मद्रदेश-वासियों का जो मल है, वह सब तुम्हें प्राप्त हो। पांचाल देश के लोग वेद के अनुसार धर्म में चलते हैं, कुरुदेश के लोग धर्म के अनुसार चलते हैं, मत्स्य देश के लोग सत्य बोलते हैं और सूरसेन के वासी यज्ञ करते हैं। पूर्वदेश के लोग दासकर्म करने वाले, दक्षिण के निवासी वृषल, बाहीक देश के लोग चोर और सौराष्ट्र देश के लोग वर्णसंकर होते हैं। कृतघ्नता, परधन-अपहरण, मदिरापान, गुरुपत्नी-गमन, कटुवचन, गोवध, रात में बाहर घूमकर दूसरों के कपड़ों को छीन लेना, ये सब जिनके धर्म हैं, उन आरट्टों और पंचनदवासियों के लिए अधर्म नाम की कोई चीज है ही नहीं। अतएव उन्हें धिक्कार है।

मगध देश के लोग संकेत से सब बात समझ लेते हैं, कौसलवासी नेत्रों की भावभंगिमा से भाव समझ लेते हैं, कुरु तथा पांचाल देश के लोग आधी बात कहने पर ही पूरी बात समझ लेते हैं, शाल्व देश के लोग पूरी बात कहने पर उसे समझ पाते हैं, परंतु शिविदेश के लोगों की तरह पर्वतीय प्रांतों के निवासी इनसे विलक्षण होते हैं। वे पूरी बात कहने पर भी नहीं समझ पाते।

राजन! यवन जातीय म्लेच्छ सभी उपायों से बात समझ लेते हैं और शूरवीर होते हैं; परंतु वे अपने द्वारा कल्पित शब्दों पर ही अधिक आग्रह रखते हैं। बाह्लीक देश के लोग सब काम उलटे ही करते हैं। मद्रदेश के कुछ निवासी ऐसे होते हैं कि वे कुछ भी नहीं समझ पाते। शल्य! ऐसे ही तुम हो। अब मेरी बात का उत्तर नहीं देना। मद्रदेश के निवासी सभी देशों के मल हैं। मदिरापान, गुरुपत्नी-गमन, गर्भहत्या तथा परधन-हरण करने वाले आरट्ट और पंचनद वासियों को धिक्कार है। शल्य! ऐसा समझकर तुम चुपचाप बैठे रहो। पुनः प्रतिकूल बात मत कहना, अन्यथा पहले तुम्हीं को मारकर, पीछे कृष्ण और अर्जुन का वध करूंगा।

शल्य ने कहा-कर्ण! तुम जहां के राजा बनाये गये हो उस अंगदेश के लोग अपने स्वजनों को व्याधिग्रस्त होने पर त्याग देते हैं। अंगदेश के लोग अपनी स्त्री और बच्चों को बीच बाजार में बेचते हैं। भीष्म जी ने जब रथी और अति-रथी का वर्णन किया था तब उन्होंने तुम्हें अर्धरथी कहा था। इस प्रकार अपना

. **क्षत्रियस्य मलं भैक्ष्यं ब्राह्मणस्याश्रुतं मलम्।**
मलं पृथिव्यां वाहीकाः स्त्रीणां मद्रस्त्रियो मलम्
मानुषाणां मलं म्लेच्छा म्लेच्छानां शौण्डिका मलम्।
शौण्डिकानां मलं षण्ढाः षण्ढानां राजयाजकाः
(कर्ण पर्व, अध्याय , श्लोक ,)

दोष समझकर शांत हो जाओ।

कर्ण! सब देश में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। सभी देशों में उत्तम आचरण की स्त्रियां होती हैं। सभी देश के लोग दूसरों से बात करते समय एक दूसरे को चोट पहुंचाते और हंसी उड़ाते हैं, सभी देश में लंपट मिलते हैं। सभी लोग दूसरों के दोष बताने में निपुण होते हैं, किंतु वे अपने दोषों को नहीं समझ पाते। अथवा अपने दोष जानकर उनसे अनजान बने रहते हैं। सभी देशों में धर्म-पालन करने वाले राजा रहते हैं। वे दुष्टों का दमन करते हैं और सभी देश में धर्मात्मा रहते हैं। कर्ण! एक देश में रहने मात्र से सब लोग पाप नहीं करते। उसी देश में रहने वाले ऐसे लोग होते हैं कि उनके शील-स्वभाव की समता देवता भी नहीं कर सकते।

दुर्योधन ने शल्य और कर्ण दोनों की बाताकुही को रोक दिया। उन्होंने कर्ण को मित्र भाव से समझाकर तथा शल्य से हाथ जोड़कर दोनों को शांत कर दिया। शल्य और कर्ण दोनों ने दुर्योधन की बात मान ली। पश्चात कर्ण ने शल्य से कहा चलो, चलो, रथ हांको (कर्ण पर्व, अध्याय -)।

मीमांसा

रण में लड़ने वाले योद्धा के बल को बढ़ाने वाली उसकी प्रशंसा है। कर्ण के दुर्भाग्य से उसको ऐसा सारथि मिला कि वह सब समय कर्ण के मन को हतोत्साहित ही करता रहा। कर्ण में अनेक चमकते हुए गुण हैं, परंतु पांडवों के प्रति द्वेष और दुर्योधन की गलत बातों का भी पक्ष लेना भयंकर दोष है।

कर्ण द्वारा मद्रदेश की इतनी विस्तार से निंदा इस प्रसंग में अस्वाभाविक है। महाभारत की गाथाएं गायकों से सुनकर कवि लोग अपनी रुचि तथा देश-काल के अनुसार नयी-नयी बातें जोड़कर काव्य रचते गये हैं जिसमें अस्वाभाविक बातें भी आयी हैं।

शल्य और कर्ण दोनों राजा और प्रतिष्ठित हैं और इस समय दोनों क्रमशः सारथि और रथी हैं। वे एक दूसरे को अभद्र भाषा में कैसे संबोधित कर सकते हैं? अतएव लेखक की असावधानी है जो उसने जगह-जगह अस्वाभाविक वर्णन कराया है।

मद्रदेश एवं पंचनद देश की इस प्रसंग में कर्ण द्वारा जो निंदा के वचन आये हैं, उनका भेद खोलते हैं भारत विशेषज्ञ वासुदेवशरण अग्रवाल, उसे आप आगे पढ़ें-

"यहां महाभारतकार क्या कहना चाहते थे और इन श्लोकों का वास्तविक अर्थ क्या है, यह बात अभी तक किसी लेखक ने स्पष्ट नहीं की है। यह ऊपर से कर्ण और शल्य की तू-तू मैं-मैं जान पड़ती है, किन्तु इसके भीतर ठोस ऐतिहासिक तथ्य छिपा हुआ है। बात ऐसी है कि जब इस देश पर सिकन्दर ने आक्रमण किया, तो उसके अनुयायी यवनों का कुछ प्रदेशों पर अधिकार हो गया। पहले का अधिकार बाल्हीक या बल्ख प्रदेश पर था और वहां के यवन शासक वाह्लीक यवन कहलाते थे। मौर्य सम्राटों के युग में तो वे निस्तेज होकर सिकुड़े हुए पड़े रहते थे; किन्तु मौर्य साम्राज्य के बिखरने पर जब पुष्यमित्र सत्तारूढ़ हुआ, उस समय यवनों ने गांधार और पंजाब की ओर अपने पैर फैलाने शुरू किये और उनमें से दिमित्र और मेनन्द्र नामक राजाओं ने पंचनद और पंजाब के उत्तरी प्रदेश में, जिसे मद्र कहते थे, एवं जिसकी राजधानी शालक थी, अपना अधिकार जमाया। मद्रराज शल्य भी वहीं के थे। अतएव उनके व्याज से जो कुछ मद्रक यवनों के आचार और विचार के प्रति भारतीयों की प्रतिक्रिया थी, वह सब शल्य के सिर मढ़कर यहां कही गयी है। स्पष्ट ज्ञात होता है कि मद्रक यवनों का रहन-सहन भारतीयों के आचार-विचार और सामाजिक संगठन से भिन्न था। उनमें खान-पान, नाच-रंग, सुरा और मद, नग्न-नृत्य आदि बहुत-सी कुटिल प्रथाएं ऐसी थीं, जिनकी चर्चा मध्य देश में रहने वाले भारतीयों के कानों में आने लगी। तभी ऐसा हुआ कि मध्य देश में ऐसी धारणा फैली कि पांच नदियों वाला बाहीक देश पृथ्वी का मल है। वहां किसी को नहीं जाना चाहिए। यहां तक बात बढ़ी कि जो कुरुक्षेत्र, सरस्वती और दृशद्वती के बीच का प्रदेश, पृथ्वी का सबसे पवित्र स्थान माना जाता था, उसके लिए भी कहा गया है कि "तीर्थयात्रा के लिए वहां दिन में ही जाना चाहिए और रात्रि में न ठहरकर उसी दिन वापस चले आना चाहिए।" यह बात कुरुक्षेत्र की यात्रा के सम्बन्ध में कही गयी है और उसकी भी संगति यही है।

"मद्रक यवनों के विषय में ये किंवदन्तियां चलते-चलते ही गाथाओं के रूप में लोक में फैल गई थीं, यह बात स्पष्ट दिखाई पड़ती है। लगभग एक जैसा वर्णन कुछ हेर-फेर से - बार दुहराया है और उसका ढंग यही है कि एक किसी ब्राह्मण ने ऐसा कहा था, किसी दूसरे ब्राह्मण ने ऐसा कहा था। मैंने धृतराष्ट्र की सभा में ऐसा सुना था इत्यादि।"

. **भारत सावित्री, पृष्ठ - ।**

"इस प्रकार कर्ण पर्व के इस प्रकरण में मद्रक यवनों के विषय में हेरफेर से नव प्रकार की गाथा-गुच्छक आगे-पीछे कहे गये हैं और हर बार उन्हें किसी ब्राह्मण से सुना हुआ या कहा हुआ बताया है। अब इन गाथाओं की बारीक छानबीन करने से यह बात छिपी नहीं रहती है कि लेखक का संकेत पंजाब या सियालकोट के उन यूनानियों से था, जिन्हें भारतीय इतिहास में मद्रक यवन कहा गया है। वस्तुतः ये लोग बाल्हीक या बल्ख के मूल निवासी थे और वहीं से इन्होंने पंजाब में आकर अपना राज्य स्थापित किया। इन्हीं राजनैतिक घटनाओं के कारण पंजाब या पंचनद देश, जो पहले बाहलीक कहलाता था, बाल्हीक भी कहा जाने लगा। इस वर्णन में न केवल यवन मद्रक और बाल्हीक का नाम कई बार आया, किन्तु इसमें कुछ संकेत ऐसे हैं, जो पंजाब के यूनानियों पर ही घटित होते हैं, जैसे यह कहना कि उन लोगों में स्त्री और पुरुषों में मिलकर नाचने और गाने की परिपाटी है। उनके यहां की इन संगतों में आबाल वृद्ध, यहां तक कि अजनबी भी सम्मिलित होते थे। उनमें खड़े होकर लघुशंका करने की प्रथा थी। उनके यहां आसव पीने और कई प्रकार का मांस खाने का मुंह छिपे रिवाज था, यहां तक कि गोमांस भी उनसे छुटा न था। वे शाकल देश में या सियालकोट नामक अपनी राजधानी में, जहां मिनांडर राजा था और जिसका वर्णन मिलिन्द पन्न में आया है, विशेष अवसरों पर अपने देवता डायोनियस का उत्सव मनाते थे, जिसे यहां पर्व कहा गया है (,)। उसमें उनकी प्रसिद्ध गणिकाओं के साथ शिष्य लोग भी नृत्य करते थे। उन गणिकाओं को यूनानी भाषा में हइतेरा कहा जाता था। उन्हीं के लिए महाभारत के लेखक ने 'हा हते' 'हा हते' कहा है, जो यूनानी शब्द का संस्कृत रूप है। यूनानी देश में पेरिक्लीज के समय से ही इन गणिकाओं का ऊंचा स्थान था। महाभारत में कहा है कि उनका कोई स्वामी या भर्ता नहीं होता था।

"एक विशेष बात जो यहां कही गई है, वह यह है कि वे अपने इन उत्सवों के समय जो भोज करते थे, उसमें पहला दौर समाप्त होने के बाद जब रात्रि और बढ़ती तो दूसरे दौर में बांसुरी, वीणा आदि बाजों पर गाने गाये जाते थे। उन्हें सिम्पोजिया (Symposia) कहते थे, उन्हें ही यहां घोषिका गाथा कहा गया है। यवनों में मिट्टी के पात्र का विशेष रिवाज था और वे बड़े सुन्दर साफ बनाये जाते थे। एक विशेष बात जो कही है, वह यह है कि खाने-पीने के समय उनमें पात्रों का संकर होता था, अर्थात जूठे हो जाने का विचार कोई न था। एक के पिये हुए या खाये हुए बर्तन में दूसरे भी खाते-पीते थे। (*पात्र-संकरिणो जाल्माः*

सर्वान्न-क्षीरभोजना ,)। एक अन्य विशेष उल्लेख यह है कि उनमें वर्ण, धर्म और जाति-पांति का कोई विचार न था। एक ही घर में एक व्यक्ति दार्शनिक होता तो दूसरा व्यापारी या दास बन जाता था और इस स्थिति में भी उलट-फेर होता रहता था। कभी कोई क्षत्रिय बनता, कभी वही नापित का काम करने लगता था। जो बाल्हीक देश पहले परम पवित्र समझा जाता था, उसी के लिए मध्य देश के लोगों में कुत्सा की भावना फैल गयी; क्योंकि वहां के विचार-आचार भारतीय सदाचार से एकदम विपरीत थे। इसी महाभारत में बाल्हीक शब्द की एक व्युत्पत्ति यह दी हुई है कि पांच नदियां जहां बहती थीं, वह बाहलीक था; किन्तु अब एक नई व्युत्पत्ति गढ़ी गई जो जनता में फैल गई, वह यह थी कि व्यास नदी के किनारे दो यक्ष या राक्षसों के स्थान थे। उन्हीं की सन्तान बाल्हीक देश में भर गई।

"यवनों के सम्बन्ध में एक बहुत ही महत्वपूर्ण, पर छिपा हुआ उल्लेख इस श्लोक में आया है–

इति रक्षोप सृष्टेषु विषवीर्यहतेषु च।
राक्षसं भेषजं प्रोक्तं संसिद्धं वचनोत्तरम् (,)।

"यह कथन एकदम ठीक है। इसमें चार बातें स्पष्ट कही गई हैं, जो चारों यूनानियों के ओरैकिल में घटित होती हैं। ओरैकिल एक प्रकार के यक्ष स्थानीय प्रश्नोत्तर थे। वहां कुछ लोग पुजारी या पुजारिनों के रूप में रहते थे। उन्हें ही यहां राजयाजक कहा है। राज्य की ओर से इन स्थानों या चत्वरों की व्यवस्था की जाती थी। इन पुजारियों के सिर पर भूत-प्रेत आ जाते थे। अतएव उन्हें रक्षोपसृष्ट कहा गया है। जब वे अभुवाने लगते तो लोग उनसे अपने लिए तरह-तरह की बातें पूछते थे और वे जो उपाय या प्रत्युपाय बताते, उसे ही राक्षस-भेषज कहा गया है, अर्थात ब्रह्म-राक्षस या यक्ष का बताया हुआ कल्याण का उपाय। एक बात यह भी थी कि इस प्रकार अभुवाते हुए पुजारियों से कुछ राजनैतिक या सामाजिक भविष्य के लिए प्रश्न किये जाते थे। उनका जो उत्तर होता था, लोग उसे ही नितांत सही मानते थे। उसी को यहां संसिद्ध वचनोत्तर कहा है। एक विशेष बात ध्यान देने की है कि इस प्रकार के व्यक्तियों को बहुत दिनों तक थोड़ा-थोड़ा विष चटाकर या अमल देकर तैयार किया जाता था, जिससे वे बिलकुल निःसत्व हिजड़े की भांति हो जाते थे। उन्हें ही यहां विषवीर्यहत कहा गया है। आरम्भ में ही यह कहा है कि यूनानी या मद्रक बाल वृद्ध स्त्री-पुरुष खेलों के बहुत शौकीन थे (*स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च प्रायः क्रीड़ागता जनाः ,)*। उनमें मुक्केबाज खिलाड़ियों (मौष्टिक) का बहुत

रिवाज था। वे लोग एक प्रकार के तैयार जवान पट्ठे थे, जो खिला-पिलाकर मुस्टण्डे बनाये जाते थे और उन्हें बधिया भी कर दिया जाता था। फिर उन्हें साड़ों की तरह निर्द्वन्द्व शेरों या जानवरों से लड़ाया जाता था। उन्हें यहां संड कहा गया है।

मानुषाणां मलं म्लेच्छ म्लेच्छानां मौष्टिका मलम्।
मौष्टिकानां मलं शण्डाः शण्डानां राजयाजकाः (,)

यहां मौष्टिक, शण्ड और राजयाजक, ये तीनों संस्थाएं म्लेच्छ-यवन या यूनानियों से संबंधित थीं।

"जिस राजनैतिक स्थिति की पृष्ठभूमि में ऊपर का वर्णन आया है, वह बड़ी असाधारण थी। मद्रक यवन शाकल में राजधानी बनाकर उत्तरी भारत पर आंख गड़ाये थे। डिमिट्रियस और मिनांडर (दिमित और मिलिन्द) नामक यवन राजाओं ने दुफंकी धावा बोल दिया। मिलिन्द ने मथुरा तक बढ़कर साकेत को छेक लिया-जैसा पतंजलि ने लिखा है-'अरुणद् यवनः साकेतं' और जयनेन्द्र व्याकरण के उदाहरण में 'अरुणाद्यवनो मथुराम्' ऐसा भी उल्लेख आया है। दूसरी ओर यवन सेना ने राजस्थान के दक्षिण पूर्व में स्थित चित्तौड़ के पास की मध्यमिका नामक राजधानी पर हमला किया, जिसके लिए पतंजलि ने भाष्य में लिखा है 'अरुणद् यवनो मध्यमिकाम्' किन्तु देश के सौभाग्य से दो घटनाएं ऐसी हुईं, जिनसे यवनों की यह योजना सफल न हो सकी। एक तो सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने पाटलिपुत्र से आगे बढ़कर साकेत तक अपने राज्य का विस्तार किया और उसके पुत्र सुमित्र ने सिंधु तट पर यवनों को परास्त किया, दूसरे जैसा गार्गी संहिता में लिखा है, यवनों के अपने चक्र में ही घरेलू झगड़ा उत्पन्न हो गया और उनका राजनैतिक संगठन खोखला पड़ गया, जिस कारण उनकी सेनाओं को पीछे लौटना पड़ा।

"इन बवंडरी घटनाओं का जो गहरा प्रभाव मध्य देश की जनता के ऊपर पड़ा, उसी का छायाचित्र मद्रक यवनों के विषय में महाभारत का यह उल्लेख है। जो कहानी छन-छनकर मध्य देश की राजसभाओं में और साधु संसदों में पहुंची थी, उन्हीं का यह गाथात्मक संग्रह है। इस प्रकरण के निर्माण में महाभारत की वह विलक्षण साहित्यिक शैली भी पाई जाती है, जिसके अनुसार एक ही विषय का वर्णन करने वाले भिन्न-भिन्न संग्रह श्लोक आगे-पीछे रख दिये जाते थे। यह शैली अनेक स्थानों में पाई जाती है। अंग्रेजी में इसे 'जक्सटा पोजिशन' कहा जाता है। यहां पर गाथात्मक संग्रह के नव ( ) टुकड़े इस

शैली का चोखा नमूना प्रस्तुत करते हैं। इनमें अर्थों की बहुत कुछ समानता है और कुछ हेरफेर भी है। यहां इस सामग्री को पुरावृत्त कथा और यथार्थ वर्णन कहा गया है। वस्तुतः कर्ण और शल्य तो कथनोपकथन के लिए निमित्त मात्र हैं। प्रसंग का मूल शीर्षक तो मद्रक-कुत्सन यही था, जैसा कि पुष्पिका में आया है।"

उक्त उदाहरण से स्पष्ट हो गया है कि किसी पंडित ने उक्त मद्रक-निंदा प्रसंग को कर्ण के मुंह में डालकर ईस्वी सन के पहले या पीछे निकाला है और महाभारत में उक्त स्थान पर जड़ दिया है।

. कर्ण की मार से युधिष्ठिर घायल, पांडव सेना ध्वस्त, भीम का पराक्रम, युधिष्ठिर-अर्जुन में विवाद

युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन ने कौरव-सेना पर आक्रमण किया। दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में अर्जुन और कर्ण दोनों ने अपने-अपने पराक्रम दिखाये। कर्ण ने पांडवों के बहुत योद्धाओं और पांडव-सेना का संहार किया। भीम ने कर्ण के एक पुत्र भानुसेन को मार गिराया। नकुल और सात्यकि ने मिलकर वृषसेन से युद्ध किया और कर्ण ने युधिष्ठिर पर आक्रमण किया। कर्ण और भीम भिड़ गये। इसमें कर्ण भाग खड़े हुए। भीम ने कौरव-सेना के अनेक योद्धाओं को मारा। भीम ने गजसेना, रथसेना तथा घुड़सवार सेना का काफी संहार किया। दोनों दलों में घोर युद्ध चलता रहा। इसमें कौरव-सेना काफी पीड़ित हुई। अर्जुन ने संशप्तकों की सेना का घोर संहार किया। कृपाचार्य ने शिखंडी को पराजित किया और धृष्टद्युम्न द्वारा कृतवर्मा पराजित हुए।

अश्वत्थामा ने घोर युद्ध किया। इसमें सात्यकि का सारथि मारा गया। द्रोणाचार्य के शिष्य युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा से कहा-तुम बड़े वीर हो, परंतु तुम द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न से लड़ो, तब तुम्हें पता चलेगा। तुम आज मुझे मार डालना चाहते हो, यह न तुम्हारा प्रेम है और न कृतज्ञता, ब्राह्मण को तप, दान तथा वेदाध्ययन करना चाहिए। धनुष उठाना तो क्षत्रिय का काम है। अतएव तुम नाम मात्र के ब्राह्मण हो। अश्वत्थामा उक्त बातें सुनकर मुस्कराया और युधिष्ठिर पर बाण चलाने लगा।

. **भारत सावित्री पृष्ठ - ।**

. कर्ण की मार से युधिष्ठिर घायल

नकुल-सहदेव दुर्योधन से भिड़ गये। धृष्टद्युम्न ने दुर्योधन को खदेड़ दिया। कर्ण ने पांचाल सेना का संहार किया। भीम ने कौरव-सेना का विनाश किया। अश्वत्थामा और अर्जुन भिड़ गये। इसमें अश्वत्थामा भाग खड़े हुए। दुर्योधन ने अपनी सेना को ललकारा। अश्वत्थामा ने प्रतिज्ञा की कि मैं आज धृष्टद्युम्न को मार गिराऊंगा। इसी ने तो द्रोणाचार्य की हत्या की थी।

अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा–हम युधिष्ठिर के पास चलें। श्रीकृष्ण ने रथ हांका और अर्जुन को युद्ध-भूमि दिखाते तथा वहां का समाचार बताते हुए रथ आगे बढ़ाते चले। धृष्टद्युम्न और कर्ण लड़ ही रहे थे, बीच में अश्वत्थामा आकर धृष्टद्युम्न पर टूट पड़े। अर्जुन ने धृष्टद्युम्न की रक्षा की और अश्वत्थामा पराजित होकर भाग खड़े हुए।

श्रीकृष्ण ने कहा–अर्जुन! दुर्योधन और कर्ण युधिष्ठिर को पकड़ लेने या मार देने के चक्कर में उनके पीछे पड़े हैं। अतएव अब तुम कर्ण को मार गिराओ। देखो कर्ण युद्ध में बड़ा पराक्रम दिखा रहे हैं। युद्ध चल ही रहा है। कर्ण शिखंडी को, सहदेव उलूक को, सात्यकि शकुनि को, कृपाचार्य युधामन्यु को, कृतवर्मा उत्तमौजा को तथा भीम दुर्योधन को पछाड़ते हैं।

कौरव-सेना ने युधिष्ठिर पर घोर आक्रमण कर दिया। कर्ण ने नकुल-सहदेव सहित युधिष्ठिर को पराजित कर दिया। युधिष्ठिर घायल होकर अपनी छावनी में चले गये और विश्राम करने लगे।

इधर अर्जुन ने अश्वत्थामा को पराजित किया। कौरव-सेना में भगदड़ मच गयी। दुर्योधन ने कर्ण को उत्तेजित किया तो उन्होंने पांचालों का घोर संहार किया। श्रीकृष्ण और अर्जुन युद्ध का सारा भार भीम को सौंपकर युधिष्ठिर से मिलने गये, क्योंकि वे घायल-अवस्था में पड़े थे। दोनों ने युधिष्ठिर के दर्शन किये। युधिष्ठिर शय्या पर पड़े थे। उनको भ्रम हुआ कि अर्जुन कर्ण को मारकर मेरे पास आये हैं। युधिष्ठिर ने कहा–आज कर्ण ने मुझे घेर लिया था। मैं उससे इतना भयभीत हो गया था कि उसे सब समय सामने आया हुआ देखता था। कर्ण ने मेरी ध्वजा काट दी, मेरे रक्षकों को मार डाला, मेरे रथ में जुते हुए घोड़ों को मार डाला और मुझे घायल कर दिया। भीम के बल से मैं मरने से बच गया हूं। अर्जुन! तुमने कर्ण को मार गिराया है, यह बड़ी प्रसन्नता की बात है।

अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा–राजन! अभी तक मैं कर्ण को नहीं मार पाया हूं; परंतु आज मैं उसे अवश्य मार डालूंगा। युधिष्ठिर ने जब जान पाया कि अर्जुन ने अभी तक कर्ण को नहीं मार पाया है, तो वे उत्तेजित हो गये और उन्होंने कहा–अर्जुन! तुम्हारी सारी सेना कर्ण की मार से भाग खड़ी हुई है।

तुमने इस बात की उपेक्षा की है। जब तुम कर्ण को जीत नहीं सके, तो उससे भयभीत होकर भीम को वहीं छोड़कर मेरे पास चले आये। मैं कर्ण से पराजित हो गया हूं। मेरे जीवन को धिक्कार है। अर्जुन! यदि तुम कर्ण को नहीं मार सकते हो, तो अपना प्रसिद्ध गांडीव धनुष दूसरे किसी को दे दो जो तुमसे बलवान हो।

युधिष्ठिर की उक्त बातें सुनकर अर्जुन क्रुद्ध हो गये और उन्होंने उनको मार डालने के लिए तलवार उठा ली। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा–धनंजय! यह क्या, तुमने तलवार कैसे उठा ली?

अर्जुन ने कहा–मैंने मन ही मन यह संकल्प कर रखा है कि यदि कोई कहे कि तुम गांडीव धनुष दूसरे को दे दो, तो मैं उसका सिर काट लूंगा; अतएव आज मैं युधिष्ठिर का सिर काटकर उस प्रतिज्ञा को पूरी करूंगा। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को डांटा और समझाया किंतु अर्जुन का रोष कम नहीं हुआ। उन्होंने युधिष्ठिर से कहा–राजन! तू युद्ध से भागकर एक कोस दूर आ बैठा है; अतएव तू मुझसे न बोल, न बोल। हां, भीम मेरी निंदा करने का अधिकारी है जो युद्ध में अकेले ही जूझ रहा है। राजा युधिष्ठिर! तू तो केवल कटु बोलने में शूरवीर है। मैं स्त्री, पुत्र और अपना जीवन समर्पित कर तेरा हित कार्य करता रहा, परंतु तू तो अपने वाग्बाणों से मुझे छेद रहा है। हम लोग तुमसे थोड़ा भी सुख नहीं पाये। तू द्रौपदी की शय्या पर बैठा-बैठा मेरा अपमान न कर। मैं तेरे लिए ही बड़े-बड़े योद्धाओं का संहार कर रहा हूं। तू मेरे प्रति संदेह करके निष्ठुर हो रहा है। तुझसे कोई सुख मिला, इसकी मुझे याद नहीं है। मैं तेरे राज्य का अभिनंदन नहीं करता। तू तो अपना अहित करने वाला जुए में आसक्त है। तू स्वयं नीच कर्म करके अब हम लोगों द्वारा शत्रुसेना रूपी समुद्र को पार करना चाहता है। जुए के पाप को सहदेव ने तुझे बताया था, और तूने उसे सुना भी था, तो भी तू उसे त्याग न कर सका। इसलिए हम सब नरकतुल्य कष्ट में पड़ गये। तुमसे थोड़ा भी सुख मिला हो, यह हम नहीं जानते। हमारे द्वारा मारी गयी सेना अपने कटे हुए अंगों के साथ पीड़ा से कराह रही है। तूने वह क्रूरतापूर्ण कर्म कर डाला, जिससे पाप तो होगा ही, कौरव-वंश का विनाश भी होगा। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सभी दिशाओं के योद्धा मारे गये। युधिष्ठिर! तू भाग्यहीन जुआरी है। तेरे ही कारण मेरे राज्य का विनाश हुआ है और तुझसे ही हमें घोर संकट मिला है। अब तू अपने वचन रूपी चाबुक से मुझे मारकर पीड़ित न कर।

अर्जुन उक्त कड़वी बातें कहकर चुप हो गये। उनका मन उद्वेगित हो गया। उन्होंने पुनः लंबी तलवार खींच ली। श्रीकृष्ण ने कहा–यह क्या, तलवार किसलिए खींच ली? अर्जुन ने कहा–मैंने अपने बड़े भाई को बड़ी अनुचित बातें कह डाली, अतएव मैं अपने ही गले को काटकर मर जाऊंगा।

श्रीकृष्ण ने कहा–अर्जुन! तुम राजा युधिष्ठिर को 'तू' कहकर घोर पश्चाताप में डूब गये हो। यदि तुम उन्हें मार डालते, तो आज तुम्हारी क्या दशा होती? दूसरे की हत्या तो पाप है ही, आत्महत्या महापाप है।

अर्जुन को घोर ग्लानि हुई। उन्होंने युधिष्ठिर के चरणों में सिर झुकाकर क्षमा मांगी और कहा कि या तो मैं आज कर्ण को मार डालूंगा अथवा वह मुझे मार डालेगा। युधिष्ठिर प्रसन्न हुए और उन्होंने अर्जुन को आशीर्वाद दिया (अध्याय -)।

मीमांसा

कर्ण की मार से पांडव तथा उनकी सेना त्रस्त है। जैसे दरिद्र मनुष्य आपस में कलह करते हैं, वैसे पराजय की स्थिति में आज युधिष्ठिर और अर्जुन आपस के कलह में उबल पड़े। युधिष्ठिर का घोर अविवेकपूर्ण जुआ महा पाप था ही, द्रौपदी को पंचभतारी बनाने में युधिष्ठिर ही मुख्य कारण थे। जब उन्होंने देखा कि मैं अकेला द्रौपदी को नहीं पा सकता, तो उसे पंचभतारी बना दिया। वही कुढ़न अर्जुन के मन में दबी थी जो आज उनके मुख से निकल पड़ी कि युधिष्ठिर! तू द्रौपदी की शय्या पर बैठा-बैठा मेरा अपमान कर रहा है। अथवा लेखक ने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से यह भड़ास अर्जुन के मुख से निकलवाई है। युधिष्ठिर के घोर अविवेकपूर्ण जुआबाजी के परिणाम में ही पांडवों का राज्य गया और वे वन-वन भटके तथा आज घोर नर-संहार तथा कुल-संहार हो रहा है। यद्यपि युधिष्ठिर के अनेक गुण गंभीर हैं।

. भीम का दुःशासन को मारकर रक्तपान तथा अश्वत्थामा का दुर्योधन से संधि कर लेने का प्रस्ताव

श्रीकृष्ण ने रथ हांका। अर्जुन युद्ध-यात्रा में हैं। श्रीकृष्ण उन्हें कर्ण को मारने के लिए उत्साहित करते हैं। अर्जुन भी गर्वोक्ति में बमकते हैं। दोनों

सेनाओं में युद्ध चलने लगा। अर्जुन और भीम द्वारा कौरव-सेना का घोर संहार हुआ। भीम ने शकुनि को पराजित कर दिया। दुर्योधन सेना सहित भागकर कर्ण के पास चले गये। फिर कर्ण से पांडव-सेना का संहार हुआ, तथा बचे लोग भाग खड़े हुए। अर्जुन ने कौरव-सेना को काटकर खून की नदी बहा दी। श्रीकृष्ण सहित अर्जुन कर्ण के सामने जा पहुंचे।

दोनों तरफ से मारामारी चल ही रही थी कि भीम दुःशासन से भिड़ गये, और उसकी एक बांह उखाड़ ली। फिर तलवार से उसका गला काटकर उसका रक्त पीकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। उन्होंने दुःशासन के रक्त को दूध, मधु, घी तथा समस्त उत्तम पेय-पदार्थों से मीठा बताया। भीम के ऐसे कृत्य तथा भाव देखकर लोग उन्हें राक्षस कहकर वहां से भाग खड़े हुए।

कौरव-सेना अधिक मारे जाने से कर्ण को भय लग गया। कौरव-योद्धाओं ने पांडव-पक्षी कुलिंदराज के पुत्रों तथा पांडव-सेना का संहार किया।

कर्ण और अर्जुन आमने-सामने अपने-अपने रथ खड़े कर दिये। लोगों में संशय था कि अर्जुन जीतेंगे या कर्ण। अर्जुन ने कौरव-सेना का भयंकर संहार किया। इससे दुर्योधन पीड़ित हैं। साथ ही भीम द्वारा दुःशासन को मारकर उसका रक्त पीना भयंकर काम हुआ है।

अश्वत्थामा ने दुर्योधन का हाथ पकड़कर उसे दबाया और उनसे अत्यंत सांत्वना के स्वर में कहा-दुर्योधन! अब प्रसन्न हो जाओ। पांडवों से संधि कर लो। विरोध से कोई लाभ होने वाला नहीं है। आपस के इस झगड़े को धिक्कार है। द्रोण, भीष्म आदि महारथी मारे गये। विरोध दुखद है। अतः अब पांडवों से मिलकर राज्य करो। जब मैं अर्जुन को मना करूंगा कि युद्ध न करो, तो वे मान जायंगे। श्रीकृष्ण भी तुम लोगों में विरोध नहीं चाहते। युधिष्ठिर तो सबका हित चाहते हैं। वे तो मान ही जायंगे। रहे भीम और नकुल-सहदेव, वे युधिष्ठिर की बात मानकर शांत हो जायंगे। तुम्हारे तथा पांडवों में मेलजोल हो जाने पर प्रजा को भी शांति मिलेगी। बचे हुए सगे-संबंधी अपने-अपने घर लौट जायंगे। बचे हुए सैनिकों को भी मार-काट से छुट्टी मिल जायगी। यदि मेरी बात नहीं मानोगे तो पीछे तुम्हें बहुत पश्चाताप करना पड़ेगा। मेरे अनुरोध करने पर बूढ़े पिता धृतराष्ट्र और यशस्विनी माता गांधारी को देखकर युधिष्ठिर संधि पर सहमत हो जायंगे। युधिष्ठिर समझदार हैं, अतः तुम्हारे लिए राज्य का जितना भाग उचित है, उस पर शासन करने के लिए वे तुम्हें स्वयं आज्ञा दे देंगे। अपने लोगों से कोई भूल हो जाय तो उसे अक्षम्य अपराध नहीं माना जाता। श्रीकृष्ण भी यह नहीं चाहते कि आपस में कलह हो। तुमसे मेरी घनिष्ठ मित्रता है। मैं तुम्हारा

हितचिंतक हूं। इसलिए कहता हूं, यदि तुम मेरे प्रस्ताव को प्रेमपूर्वक मान जाओगे तो मैं कर्ण को मना लूंगा।

दुर्योधन ने उक्त बातें सुनकर लंबी सांस खींची और भीतर से दुखी होकर इस प्रकार कहा–"सखे! तुम्हारा कहना ठीक है, परंतु मेरी बातें भी तुम सुनो। अभी भीम ने सिंह के समान दुःशासन को मारकर तथा उसका रक्त पीकर जो बात कही है, वह तुमसे छिपी नहीं है। वह मेरे हृदय को पीड़ित कर रही है। ऐसी स्थिति में कैसे संधि होगी? हमने हठपूर्वक जो बारंबार वैर किया है, इससे पांडव मुझ पर विश्वास भी नहीं करेंगे। विप्रवर गुरुपुत्र! तुम्हें कर्ण को युद्ध से हटने की बात भी नहीं कहना चाहिए। इस समय अर्जुन अति परिश्रम से थके हुए हैं; अतएव कर्ण उन्हें मार डालेंगे।" दुर्योधन अनुनय-विनय करके अश्वत्थामा को ही मनाने लगे कि आप संधि करने की बात न उठायें। फिर दुर्योधन ने सैनिकों को आदेश दिया–अरे! तुम लोग हाथ में धन्वा-बाण लिए चुपचाप बैठे क्यों हो, शत्रुओं पर टूट पड़ो और उन्हें मार डालो (अध्याय -)।

मीमांसा

दुर्योधन को सब समय अपनी जीत दिखायी देती थी। जब उनके पिता-माता धृतराष्ट्र और गांधारी तथा पितामह महर्षि वेदव्यास उन्हें नहीं समझा पाये, तब दूसरा कौन समझा पायेगा।

. अर्जुन द्वारा कर्ण की रणनीति-विरुद्ध हत्या

अर्जुन और कर्ण का घोर संग्राम चलने लगा। इसी बीच कर्ण के रथ का एक पहिया जमीन में धंस गया। वह रथ से उतरकर पहिया को दोनों हाथों से पकड़कर उठाया, परंतु वह न निकला "कर्ण ने चक्के को ऊपर उठाते समय ऐसा झटका दिया कि शैल, वन-कानन सहित सात द्वीपों वाली पृथ्वी चार अंगुल ऊपर उठ गयी, परंतु चक्का नहीं निकला।" अतएव कर्ण ने अर्जुन से निवेदन किया "जब तक मैं फंसे हुए चक्के को निकालकर रथ पर न चढ़ जाऊं तब तक आप युद्ध रोक दें। आप युद्ध-धर्म को जानने वाले सदाचारी हैं। मैं आपको तथा श्रीकृष्ण को डरता नहीं हूं; किंतु इस समय अड़चन में फंस गया हूं, इसलिए पहिया निकलते तक आप युद्ध रोक दें।"

. **सप्तद्वीपा वसुमती सशैलवनकानना।**
जीर्णचक्रा समुत्क्षिप्ता कर्णेन चतुरंगुलम् कर्ण पर्व, ,

इसी समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा–"पार्थ! कर्ण जब तक रथ पर नहीं चढ़ जाता, तब तक ही अपने बाण के द्वारा इस शत्रु का मस्तक काट दो।" अतएव अर्जुन ने कर्ण को उसी समय अपने बाणों से मार गिराया, जब वह शस्त्र-हीन होकर रथ का पहिया जमीन से निकाल रहा था।

कौरवों को शोक होना ही था और पांडवों को हर्ष। कौरव-सेना भाग खड़ी हुई। शल्य दुखी हुए। उन्होंने दुर्योधन को भी सांत्वना दी। इसके बाद भीम ने पचीस हजार पैदल सैनिकों का संहार किया। अर्जुन ने रथ-सेना का संहार किया। कौरव-सेना भागने लगी। दुर्योधन ने उसे रोकना चाहा, परंतु रोक न सके।

शल्य ने रणभूमि का निरीक्षण किया। कौरव-सेना तो भाग ही गयी थी। श्रीकृष्ण और अर्जुन शिविर में लौट गये। कौरवों की शेष सेना भी शिविर में लौट गयी। जब युधिष्ठिर ने जाना कि कर्ण मारा गया, वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने श्रीकृष्ण और अर्जुन की बड़ी प्रशंसा की। उन्होंने कहा–हम लोग अत्यंत दुखी होकर जागते हुए तेरह वर्ष व्यतीत किये हैं। हे कृष्ण! आपकी कृपा से आज रात हम लोग सुख से सोयेंगे (अध्याय –)।

मीमांसा

कर्ण द्वारा रथ का पहिया निकालते समय पूरी पृथ्वी चार अंगुल उठ गयी, किंतु पहिया न निकला, यह अतिशयोक्ति कर्ण की शक्ति की महिमा में कही गयी है। श्रीकृष्ण और अर्जुन भीष्म, द्रोण तथा कर्ण को रणनीति से मारने की शक्ति नहीं रखते थे, तभी उन्हें छल, असत्य तथा अनीति से मारा गया। यह अर्जुन और कृष्ण के तथाकथित नर-नारायण होने की सच्चाई है।

. **महाभारत, कर्ण पर्व, अध्याय , श्लोक ।**

सद्गुरवे नमः

महाभारत मीमांसा

नवां : शल्यपर्व

. दुर्योधन–भीम का गदा युद्ध, भीम द्वारा अनीतिपूर्वक दुर्योधन का अंत

कृपाचार्य ने दुर्योधन को समझाया कि तुम्हारे सब भाई प्रायः मारे गये हैं। भीष्म, द्रोण, कर्ण, जयद्रथ सब संसार से चले गये। अब तुम किसके बल पर और किसके लिए युद्ध करोगे? जिनकी तरफ श्रीकृष्ण जैसे नेता हैं उनका तुम क्या कर पाओगे? मेरी बात यदि जंचे तो पांडव से संधि कर लो। तुम राजा युधिष्ठिर के सामने नतमस्तक होकर अपना राज्य प्राप्त कर लो यही उत्तम है। मूर्खतावश पराजय स्वीकारना भलाई नहीं है। युधिष्ठिर दयालु हैं। वे श्रीकृष्ण तथा राजा धृतराष्ट्र के कहने से तुम्हें तुम्हारा राज्य दे देंगे। राजा धृतराष्ट्र की बात श्रीकृष्ण नहीं टालेंगे और श्रीकृष्ण की बात का उल्लंघन युधिष्ठिर नहीं करेंगे। मैं पांडवों से संधि करना कल्याणकारी मानता हूं, युद्ध को नहीं। मैं यह सब कायरता से नहीं कह रहा हूं, अपितु तुम्हारे हित की बात बता रहा हूं। यदि मेरी बात नहीं मानोगे तो अंत में पछताओगे और मेरी बात याद करोगे।

दुर्योधन ने कहा–ब्रह्मन! एक हितैषी व्यक्ति जैसी राय दे सकता है वैसी आपने दी है, परंतु बात तो यह है कि शुरू से आज तक हमने जो कुछ पांडवों के साथ किया है, वह सब वे कैसे भूल जायंगे और कैसे हमें क्षमा करेंगे? हम क्षत्रिय के लिए दीन बनकर राज्य की भीख मांगना लज्जास्पद है। संसार में कोई भी सुख स्थिर रहने वाला नहीं है, तो राज्यसुख कैसे स्थिर रहेगा? क्षत्रिय का खाट पर पड़कर मरना निंदित है। मैंने सब कुछ देख और भोग लिया है। अब वीर की तरह मरना है। अतएव संधि नहीं, हमें युद्ध चाहिए।

दुर्योधन ने गुरु–पुत्र अश्वत्थामा के पास जाकर सेनापति पद के लिए राय मांगी कि अब किसे सेनापति बनाया जाय? अश्वत्थामा ने शल्य को सेनापति बनाना उचित समझकर उन्हीं के लिए राय दी। शल्य ने सेनापति पद स्वीकार लिया और अपने सगे भांजे पांडवों को मारने के लिए बीड़ा उठा लिया और ऐसे समय में उनका डींग हांकना भी स्वाभाविक ही था।

दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हुआ। कौरव–सेना भाग खड़ी हुई। नकुल ने कर्ण के तीन पुत्रों को मार डाला। दोनों दल में भयानक युद्ध हुआ। युधिष्ठिर तथा माद्री पुत्र नकुल–सहदेव से मद्रनरेश शल्य का युद्ध छिड़ा। युधिष्ठिर ने शल्य पर शक्ति का घातक प्रहार कर उन्हें मार गिराया। इसी बीच धृष्टद्युम्न ने राजा शाल्व के हाथी को मार डाला और सात्यकि ने शाल्व को मार डाला। सहदेव ने शकुनि तथा उसके पुत्र उलूक को मार डाला।

युद्ध में दुर्योधन घायल हो गये। वे गदा लेकर युद्ध–स्थल से भागकर एक जलाशय में चले गये और उसमें पड़कर विश्राम करने लगे। कृपाचार्य, अश्वत्थामा और सात्वतवंशी कृतवर्मा ने सरोवर के पास जाकर दुर्योधन से कहा–उठें, चलें, युधिष्ठिर से युद्ध करें। दुर्योधन ने कहा–मैं घायल हूं। आज मुझे इस सरोवर के जल में विश्राम करने दो। कल मैं निकलकर युद्ध करूंगा। शत्रुओं को मारूंगा या उनके द्वारा मारा जाऊंगा।

युधिष्ठिर ने व्याधों द्वारा पता लगा लिया कि दुर्योधन सरोवर के जल में छिपे हुए हैं। पांडव वहां गये। कृपाचार्य, अश्वत्थामा तथा कृतवर्मा पांडवों को आते देखकर तथा दुर्योधन से आज्ञा लेकर वहां से चले गये।

युधिष्ठिर ने हंसते हुए दुर्योधन से कहा–प्रजानाथ सुयोधन! तुम शूर–वीर हो। यहां जल में छिपकर क्यों बैठे हो? जल से निकलो और युद्ध करो। दुर्योधन ने कहा–मैं डरवश यहां नहीं पड़ा हूं, अपितु घायल और थका हूं। मैं रथ और अस्त्र–शस्त्र से विहीन हूं। मेरे पास केवल गदा है, अतएव आप में से कोई एक मेरे साथ गदा युद्ध में आ जाय। युधिष्ठिर ने कहा–तुम हम पांचों में से एक भाई को भी युद्ध में मार दो तो मैं सारा राज्य तुम्हारा ही मानूंगा।

श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को फटकारा–युधिष्ठिर! दुर्योधन यदि भीम के अलावा आप चारों भाइयों से किसी एक को गदा युद्ध के लिए वरण कर ले तब क्या होगा? आपने यह दुस्साहसपूर्ण बात कैसे कह डाली कि 'तुम हममें से एक को ही मारकर कौरवों का राजा हो जाओ।' मैं नहीं समझता कि आप लोगों में से कोई एक गदा युद्ध में दुर्योधन का सामना कर सके। भीम दुर्योधन से लड़ सकते हैं, परंतु उनसे दुर्योधन का अभ्यास गदा युद्ध में अधिक है। आपने पहले के समान पुनः जुए का खेल शुरू कर दिया। आपका यह जुआ शकुनि के जुए

से कहीं अधिक भयंकर है। आप स्वयं संकट में फंसेंगे और हमें भी फंसायेंगे। इससे लगता है कि कुंती के पुत्र राज्य भोगने के अधिकारी नहीं हैं। विधाता ने इन्हें अनंत काल तक वनवास करने तथा भीख मांगने के लिए ही पैदा किया है।

भीम ने श्रीकृष्ण से कहा–जनार्दन! आप घबरायें नहीं। मैं गदा युद्ध में दुर्योधन को मार गिराऊंगा। इसके आगे दुर्योधन तथा भीम का वाग्युद्ध एवं तू-तू, मैं-मैं शुरू हुआ।

इतने में तीर्थयात्रा करके हलधर बलराम जी आ गये। पांडवों ने उनका सत्कार किया। तीर्थयात्रा से बलराम जी आये थे, तो ऐसे अवसर पर पंडितों को तीर्थ महिमा करवाना था। अतएव उन्होंने बीस ( ) अध्यायों तथा एक हजार से अधिक श्लोकों में प्रभास क्षेत्र, उदपान तीर्थ, विनशन तीर्थ, सुभूमिक तीर्थ, गंधर्व तीर्थ, गर्गस्रोत तीर्थ, शंख तीर्थ, द्वैतवन तीर्थ, नैमिष तीर्थ, सप्तसारस्वत तीर्थ, औशनस तीर्थ, कपालमोचन तीर्थ, अवाकीर्ण तीर्थ, यायात तीर्थ, वसिष्ठापवाह तीर्थ, अग्नि तीर्थ, अभिषेक तीर्थ, ब्रह्मयोनि तीर्थ, कुबेर तीर्थ, वदरपाचन तीर्थ, इंद्र तीर्थ, राम तीर्थ, यमुना तीर्थ, आदित्य तीर्थ, सरस्वती तीर्थ, कुरुक्षेत्र तीर्थ, आदि का वर्णन कर डाला।

पहले भीम और दुर्योधन में तू-तू मैं-मैं हुई, आगे दोनों में गदा युद्ध शुरू हो गया। दोनों में देर तक घमासान चलता रहा। अर्जुन ने श्री कृष्ण से पूछा–भीम और दुर्योधन में कौन श्रेष्ठ है? श्रीकृष्ण ने कहा–बल में भीम श्रेष्ठ हैं, किंतु अभ्यास और प्रयत्न में दुर्योधन श्रेष्ठ हैं। यदि भीम नीतिपूर्वक युद्ध करेंगे तो दुर्योधन पर कभी विजय नहीं पा सकते और यदि अन्यायपूर्वक युद्ध करेंगे तो दुर्योधन को मार डालेंगे। पहले के देवताओं ने छल-कपट से ही दैत्यों पर विजय पायी थी। इंद्र ने छल-कपट से ही वृत्रासुर का तेज नष्ट किया था। अतएव यहां भीम भी छल-कपट का आश्रय लें।

अंततः यही हुआ। अर्जुन के संकेत से भीम ने दुर्योधन की जांघों पर गदा का प्रहार किया और उसकी जांघें टूट गयीं। वह धरती पर गिर पड़ा। भीम ने उछलकर दुर्योधन के मस्तक पर पैर मारा। दुर्योधन का मुकुट गिर पड़ा। भीम ने कहा–दुर्योधन! तुमने मुझे बैल-बैल कहकर नृत्य किया था, आज मैं भी तेरे सिर में ठोकर मारकर नाच रहा हूं।

युधिष्ठिर ने कहा–भीम! तुम दुर्योधन के मस्तक को पैर से न ठुकराओ। दुर्योधन राजा और मेरा भाई-बंधु है। तुमने शुभ या अशुभ से अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली।

. **शल्य पर्व, अध्याय , श्लोक - ।**

इसके बाद युधिष्ठिर ने दुर्योधन से कहा–नरेश! खेद मत करो। सब जीव अपने ही किये कर्म का फल भोगते हैं। तुम्हारे अपराध से ही हमने तुम्हारे भाइयों को मार डाला है और परिवार का वध किया है। तुम तो स्वर्ग जा रहे हो। अब तो सब प्रकार हम लोग ही शोचनीय हो गये हैं। हमें बंधु-बांधवों से रहित दुखमय जीवन बिताना पड़ेगा। हम भाइयों और पुत्रों के शोक से पीड़ित विधवा बहुओं को देखकर कैसे सुख से जी सकेंगे? तात! तुम अकेले सुखी हो; क्योंकि तुम जा रहे हो। हमें तो यहां नरक तुल्य जीवन बिताना पड़ेगा। इस प्रकार कहकर युधिष्ठिर देर तक विलाप करते रहे।

भीम द्वारा गदा युद्ध की नीति के विरुद्ध दुर्योधन की जांघ में गदा मारने के कारण बलराम भीम पर कुपित हो गये। उन्होंने कहा–भीम! तुम्हें धिक्कार है, धिक्कार है। गदा युद्ध में नाभि से नीचे मारने का नियम नहीं है। परंतु इस मूर्ख भीम ने यह अनर्थ कर डाला।

श्रीकृष्ण ने कहा–बड़े भैया बलराम! आप भीम पर क्रोध न करें। दुर्योधन ने पांडवों के साथ बड़ा छल-कपट किया था; अतएव भीम ने भरी सभा में प्रतिज्ञा की थी कि मैं दुर्योधन का जंघा तोड़ूंगा। अतएव यह भीम का अधर्म नहीं है। धर्म, अर्थ और काम के चक्कर में फंसकर संकुचित हो जाता है।

बलराम ने कहा–कृष्ण! तुम जिस तरह भीम का कार्य धर्मसंगत बता रहे हो, वह तुम्हारी मनमानी कल्पना है। भीम कपटपूर्ण युद्ध करने वाले माने जायंगे। ऐसा कहकर बलराम द्वारका चले गये। पांडव, पांचाल तथा वृष्णवंशी उदास हो गये। उनके मन में उत्साह नहीं रह गया।

अन्य लोग भी दुर्योधन के नीतिपूर्ण गदा युद्ध की प्रशंसा कर रहे थे और भीम के अनीतिपूर्ण युद्ध की निंदा। लोगों ने यह भी कहा–भीष्म, द्रोण, कर्ण, भूरिश्रवा ये सब पांडवों द्वारा अनीतिपूर्वक मारे गये। चारों तरफ से पांडवों की निंदा होने लगी।

पांडवों को दीन चित्त देखकर श्रीकृष्ण ने उन्हें सांत्वना दी और कहा–भीष्म, द्रोण, कर्ण, दुर्योधन, भूरिश्रवा आदि को आप लोग युद्ध की नीति के अनुसार नहीं मार सकते थे, क्योंकि वे बड़े बली और युद्ध-निपुण थे। इसलिए आप लोगों का हित चाहते हुए मैंने बारंबार छल-कपट का प्रयोग किया। बहुत ऐसे शत्रु होते हैं जो कूटनीति तथा छलकपट से मारने योग्य होते हैं (शल्य पर्व अध्याय –)। अब हम लोगों का कार्य पूरा हो गया। सायंकाल भी आ गया है। अब विश्राम करने की इच्छा हो रही है। अतएव हम लोग अब विश्राम करें।

श्रीकृष्ण की बातें सुनकर पांडव-समाज प्रसन्न हुआ और शंख-ध्वनि करके विश्राम करने चला गया। जब श्रीकृष्ण अर्जुन सहित शिविर में पहुंचे तो उन दोनों के रथ से उतरते ही घोड़ों सहित रथ जलकर भस्म हो गया। श्रीकृष्ण ने बताया कि यह रथ युद्ध की मार से पहले ही भस्म हो गया था, किंतु मेरे बैठे रहने से यह बना रहा। अब काम पूरा हुआ, तो यह मेरे उतरने से भस्म हो गया (अध्याय -)।

मीमांसा

दुर्योधन अनीति में लिपटे ही थे, श्रीकृष्ण और पांडव ने भी अनीति से ही बड़ों-बड़ों की हत्या की। घोड़ों सहित रथ का अपने आप दग्ध होना चमत्कारी कल्पना का जोड़ है। बिना आग लगाये रथ नहीं जल सकता।

. श्रीकृष्ण का धृतराष्ट्र तथा गांधारी को सांत्वना देना

युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को हस्तिनापुर भेजा कि वे जाकर धृतराष्ट्र तथा गांधारी को सांत्वना दें। श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र के पास पहुंचे। वहां वेदव्यास भी बैठे थे। श्रीकृष्ण ने दोनों के पैर दबाकर उनका प्रणाम किया। उसके बाद गांधारी को प्रणाम किये। इसके बाद श्रीकृष्ण धृतराष्ट्र का हाथ अपने हाथ में लेकर चिल्लाकर और फूट-फूटकर रोने लगे। दो घड़ी के बाद अपने मुख-आंखें धोकर उन्होंने राजा धृतराष्ट्र से कहा-राजन! आप वृद्ध पुरुष हैं, अनुभवी हैं। कालचक्र में जो कुछ हुआ है, आप जानते हैं। समस्त पांडव आपकी इच्छा के अनुसार बरताव करने वाले हैं। उन्होंने बहुत प्रयत्न किया कि हमारे कुल का नाश न हो। युधिष्ठिर नियत समय (तेरह वर्ष) की प्रतीक्षा करते हुए बहुत कष्ट सहे। पांडव को कपट भाव से जुए में हराकर उनको वनवास दिया गया। वे उसको सहकर समय की प्रतीक्षा किये। परंतु उन्हें उनका राज्य नहीं मिला। वे केवल पांच गांव मांगे, वह भी नहीं दिया गया।

भीष्म, सोमदत्त, बाह्लीक, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा तथा विदुर जी ने आपसे शांति के लिए याचना की थी, आप वह कार्य नहीं करा सके। आप पांडवों पर दोषारोपण न कीजिएगा। पांडवों का इसमें थोड़ा भी दोष नहीं है। यह जो कुछ हुआ, अपने ही अपराधों का फल है। अब आपका कुल पांडवों से ही चलने वाला है। आपको तथा गांधारी देवी को पिंड-पानी और पुत्र से प्राप्त होने वाला सारा फल पांडवों से ही पाना है। अतएव आप तथा गांधारी पांडवों की

बुराई करने की बात न सोचें। इन सब बातों तथा अपने अपराधों की याद कर आप पांडवों के प्रति कल्याण–भावना रखते हुए उनकी रक्षा करें। आपको नमस्कार है। आप जानते हैं कि युधिष्ठिर की आपके प्रति कितनी श्रद्धा और स्नेह है। वे इस संहार से बेचैन हैं। आप पुत्र–शोक से संतप्त हैं। ऐसी दशा में युधिष्ठिर लज्जा–वश आपके सामने नहीं आ रहे हैं।

श्रीकृष्ण ने गांधारी से कहा–कल्याणि! आप जैसी तपोबल संपन्न नारी दुर्लभ है। आपने पांडव–कौरव दोनों के कल्याण के लिए धर्मयुक्त वचन कहा था, परंतु आपके पुत्रों ने नहीं माना। आपने दुर्योधन से कहा था–ओ मूढ़! जहां धर्म है वहीं विजय है; परंतु आपके पुत्रों ने उसे नहीं माना। वही बात आज सत्य हुई। ऐसा समझकर आप शोक न करें। पांडवों का विनाश आपको नहीं सोचना चाहिए।

गांधारी ने कहा–केशव! मैं बहुत दुखी थी, परंतु तुम्हारी बातों से मुझे संतोष मिला। राजा अंधे और बूढ़े हैं। उनके सभी पुत्र मारे गये हैं। अब पांडव तथा तुम ही उनके आश्रय–दाता हो। इतना कहकर पुत्र–शोक से पीड़ित हुई गांधारी अपने आंचल से मुख ढांककर फूट–फूटकर रो पड़ी। इसके बाद श्रीकृष्ण ने अनेक युक्तियों और बातों से उन्हें धीरज बंधाया। इसके बाद वेदव्यास, धृतराष्ट्र तथा गांधारी को प्रणाम कर श्रीकृष्ण पांडवों के शिविर में चले गये।

मरण शय्या पर पड़े हुए दुर्योधन ने संजय के सामने कालचक्र की बात कही। वे भीम और पांडवों के कपट–युद्ध को धिक्कारते हुए अपने आपको कृतार्थ मानते रहे और क्षत्रियोचित वीरता से अपने जीवन के अंत से संतोष प्रकट किये।

अश्वत्थामा दुर्योधन का अंत देखकर दुखी हुए। दुर्योधन ने कृपाचार्य से जल मंगाकर अश्वत्थामा का सेनापति के पद पर अभिषेक करवा दिया (अध्याय –)।

सद्गुरवे नमः

महाभारत मीमांसा

दसवां : सौप्तिक पर्व

. अश्वत्थामा द्वारा पांचालों और पांडव-परिवार की हत्या

यह दसवां पर्व है। अश्वत्थामा सेनापति नियुक्त हुआ। उसने सोचा कि मैं युद्ध-नीति से पांडवों तथा पांचालों पर विजय नहीं कर सकता। पांडव तथा पांचाल ने स्वयं युद्धनीति छोड़कर छल-कपट तथा अन्याय से भीष्म, द्रोण, कर्ण, भूरिश्रवा तथा दुर्योधन को मारा है, अतएव हमें भी ऐसा ही करना चाहिए।

अश्वत्थामा ने कृपाचार्य तथा कृतवर्मा से राय मांगी। कृपाचार्य ने यह पसंद नहीं किया। किंतु कृपाचार्य अश्वत्थामा के मामा थे ही और कृतवर्मा यदु कुल के योद्धा थे। वे दोनों अश्वत्थामा के साथ थे, किंतु ये शिविर के द्वार पर ही रथ सहित खड़े थे और अश्वत्थामा रात में शिविर में घुसकर द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न को मार डाला। उसके बाद अनेक पांचालों को मारा। फिर सोते ही समय द्रौपदी के पांच पुत्रों को मार दिया। रात में पांचालों और पांडवों के शिविर में अश्वत्थामा ने जो खूनखराबा किया वह भयंकर था। शिविर के द्वार से भागते हुए पांडव-पक्षियों को कृतवर्मा और कृपाचार्य ने भी मारा।

यह सब समाचार सुनकर दुर्योधन प्रसन्न हुआ और शरीर छोड़ दिया। पांडव तथा द्रौपदी बहुत दुखी हुए। पांडवों ने अश्वत्थामा से बदला लेने के लिए संकल्प किया। भीम अश्वत्थामा को मारने के लिए गंगा के किनारे पहुंचे। उनके पीछे कृष्ण, अर्जुन और युधिष्ठिर भी गये। दोनों पक्षों की तरफ से मारा-मारी हुई, किंतु कोई किसी को नहीं मार पाया।

कृष्ण ने अश्वत्थामा को शाप दिया कि अश्वत्थामा! तू हत्यारा होने से कभी शांति नहीं पायेगा और अकेला वन में भटकता रहेगा। अश्वत्थामा ने अपने सिर

से अपनी मणि उतारकर पांडवों को दे दिया और स्वतः उदास–मन होकर अकेला वन में चला गया (अध्याय –)।

मीमांसा

अश्वत्थामा बल में महान था, किंतु विवेक का दुर्बल था। द्रोणाचार्य और पांचाल–नरेश द्रुपद की पुरानी शत्रुता थी। द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य को उस समय मारा जब पांडवों द्वारा झूठा संदेश फैलाये जाने के कारण कि अश्वत्थामा मारा गया, आमरण अनशन में बैठे थे। इसका बदला अश्वत्थामा ने भी अत्यंत घृणित उपाय से लिया।

अश्वत्थामा बलवान था, परंतु विवेकहीन तथा भावुक था। किसी के भड़काने से वह कुछ भी कर बैठता था। उसने अपने मस्तक की मणि पांडवों को दे दी। वस्तुतः उसका मस्तक विचार–शून्य हो गया। वह मन से पीड़ित होकर वन में भटकने लगा। सात चिरजीवियों में से अश्वत्थामा एक है–

अश्वत्थामो बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः

अश्वत्थामा, बलि, वेदव्यास, हनुमान, विभीषण, कृपाचार्य तथा परशुराम ये सात सदा जीवित रहते हैं। इसका अर्थ है कि ये सात प्रकार के लोग संसार में सदैव रहते हैं, यथा–

. अश्वत्थामा–शरीर से बली, किंतु विवेकहीन।

. बलि–सत्यपरायण, दानी।

. वेदव्यास–ज्ञानशील विद्यानिधि।

. हनुमान– सेवापरायण समर्पित भक्त।

. विभीषण–घर का भेद बाहर प्रकट करने वाला अंधस्वार्थी।

. कृपाचार्य–विद्वान, किंतु गुणविहीन।

. परशुराम–क्रोध की महामूर्ति।

सद्गुरवे नमः

महाभारत मीमांसा

ग्यारहवां : स्त्री पर्व

. स्त्रियों का रुदन, युधिष्ठिर का पश्चाताप, श्रीकृष्ण के परिवार के विनष्ट होने संबंधी गांधारी का शाप

धृतराष्ट्र ने घोर विलाप किया। संजय ने उनको सांत्वना दी। विदुर जी ने भी उनको समझाया और कहा कि शोक करने से कोई लाभ नहीं है। उन्होंने कहा–शरीर तो नश्वर है, आत्मा अमर है। वह अपने किये हुए कर्मों का फल पाता है। इसलिए अपना कर्म सुधारना चाहिए। संसार दुखों से भरा है। सबको अंत में शरीर त्यागना पड़ता है।

विदुर जी ने कहा–विषैले जंतुओं से भरे वन में एक आदमी भटक रहा है। उसने एक भयंकर स्त्री को देखा जिसकी बाहों में पूरा वन आवेष्ठित है। उस वन में एक कुआं था जो घासों और लताओं से ढका था। वह मनुष्य उस कुएं में गिर पड़ा और बीच में ही सिर नीचे तथा पैर ऊपर फंसा हुआ लटका पड़ा रहा। कुएं में नीचे एक भयंकर सर्प मुख फाड़े बैठा था। कुएं के ऊपर एक विशाल हाथी खड़ा था, जिसके छह मुंह तथा बारह पैर थे। वह आधा सफेद तथा आधा काला था। वह मनुष्य जिस लता को पकड़कर लटका था, उसे काले और सफेद दो चूहे काट रहे थे। मधुमक्खियों का बड़ा छत्ता लगा था, उससे उसके मुख में कुछ मधुरस की बूंदे आ जाती थीं। उसी में वह मग्न था।

जीव पथिक है। संसार वन है जो अनेक प्रतिकूलता रूपी विषैले जंतुओं से व्याप्त है। जीवन कुआं है जिसमें जीव लटका है। जिस आयु का सहारा लेकर जीव लटका है उसको रात-दिन रूपी काले-सफेद चूहे निरंतर काट रहे हैं। काल-सर्प नीचे बैठा है। वर्ष हाथी है जो कृष्ण-शुक्ल पक्ष के भाव से आधा सफेद और आधा काला है। छह ऋतुएं उसके छह मुंह तथा बारह महीने बारह

पैर हैं। मनुष्य विषय रूपी मधुरस चख रहा है और कामना रूपी मधुमक्खियों से निरंतर छिद रहा है, किंतु इतने पर भी वैराग्य नहीं होता है। राजन! संसार दुखों से भरा तथा क्षणभंगुर है। इससे वैराग्य करो।

वेदव्यास ने भी धृतराष्ट्र को समझाया कि संसार का सब कुछ नश्वर है, शोक मत करो। धृतराष्ट्र, गांधारी आदि युद्ध स्थल में गये। वहां मृतकों की पत्नियां भी गयीं जिनके विलाप से सारा वातावरण करुणापूर्ण हो गया। जब युधिष्ठिर ने सुना कि राजा धृतराष्ट्र मृतकों का दाह-संस्कार कराने के लिए हस्तिनापुर से चल दिये हैं, तब वे भी अपने भाइयों के साथ वहां गये। उनके साथ कृष्ण, सात्यकि तथा युयुत्सु गये। पांचाल महिलाओं के साथ द्रौपदी भी वहां आयी। वहां स्त्रियों के कई दलों का घोर रुदन चल रहा था। रोती हुई स्त्रियों की भीड़ ने युधिष्ठिर को घेरकर कहा–अहो, आपकी धर्मज्ञता और दयालुता कहां चली गयी कि आपने ताऊ, चाचा, भाई, गुरु, गुरुपुत्रों और मित्रों की हत्या कर डाली। गुरु द्रोणाचार्य, पितामह भीष्म, जयद्रथ को मारकर आपके मन की क्या अवस्था है? ताऊ, चाचा, भाइयों, अभिमन्यु, द्रौपदी के सभी पुत्रों को न देखने पर आपको राज्य-सुख कैसा लगेगा?

युधिष्ठिर ने जाकर धृतराष्ट्र का नमस्कार किया और अपना नाम बताया। धृतराष्ट्र पुत्र-शोक से पीड़ित थे। अपने पुत्रों का अंत करने वाले युधिष्ठिर को उन्होंने हृदय से लगाया, परंतु उनका मन प्रसन्न नहीं था। धृतराष्ट्र ने भीम को पूछा कि वह कहां है? श्रीकृष्ण ने भीम को झटका देकर दूर कर दिया और एक लौह की प्रतिमा को राजा के सामने कर दिया। धृतराष्ट्र ने उस लौह-प्रतिमा को भीम समझकर उसे दोनों हाथों से दबाकर तोड़ दिया। इसके बाद उन्हें शोक हुआ और विलाप कर 'हा भीम, हा भीम!' कहकर रुदन करने लगे। श्रीकृष्ण ने उन्हें बताया कि राजन! आप शोक न करें। आपका क्रोधावेश देखकर मैंने भीम को पीछे खींचकर एक लौह की मूर्ति आपके सामने कर दी थी। आपने भीम को नहीं मारा है, अपितु लौह-मूर्ति तोड़ी है। आप उद्वेगित न हों। हम लोगों ने जो कुछ किया है, उसका आप भी अनुमोदन करें।

श्रीकृष्ण ने कहा–राजा धृतराष्ट्र! मैंने पहले आपको समझाया था, परंतु आप मेरे निर्देश के अनुसार अपने पुत्रों को नहीं समझा सके, उन्हें अन्याय से नहीं रोक सके। अब उसका फल सामने आया है। अपने दुरात्मा पुत्र दुर्योधन के अत्याचार को ध्यान में लाइए। उसी का फल आज की स्थिति जानकर शांत हो जाइए।

भीम ने गांधारी से कहा–माता! मैं दुर्योधन से डरकर युद्ध-नीति से उन्हें न मार पाने का विचारकर उन्हें अनीति से मारा। मैं नीति से युद्ध कर दुर्योधन को

न मार पाता, अतएव अनीति से मारा। मैंने पहले कोई अपराध नहीं किया था, परंतु आपके पुत्रों ने हमें उच्छिन्न करने का काम किया। उस समय आपने उन्हें क्यों नहीं रोका था?

गांधारी ने कहा–मेरे पुत्रों में से जो तुम्हारे लिए सबसे थोड़ा अपराध किया होता उस एक को तुमने क्यों नहीं जीवित छोड़ दिया जो हम बूढ़े तथा अंधे की लाठी होता, सहारा बनता। तुम मेरे पुत्रों के लिए यमराज बन गये। यदि तुम मेरा एक ही पुत्र जीवित छोड़ देते तो मुझे इतना दुख न होता।

इसके बाद गांधारी ने कहा–कहां है युधिष्ठिर? युधिष्ठिर कांपते हुए हाथ जोड़े गांधारी के पास जाकर मीठी वाणी बोले–आपके पुत्रों को मारने वाला क्रूर कर्म करने वाला युधिष्ठिर मैं हूं। पृथ्वी भर के राजाओं के संहार में मैं ही कारण हूं। अतएव मैं शाप पाने योग्य हूं। आप मुझे शाप दे दें। मैं अपने मित्रों का द्रोही अविवेकी हूं। सभी स्वजनों को मरवाकर जीवन अथवा राज्य से क्या प्रयोजन रहा?

गांधारी युधिष्ठिर की उक्त बातें सुनकर रोने लगी, कुछ कह न सकी। अर्जुन भयभीत होकर कृष्ण के पीछे छिप गये। इसके बाद गांधारी से आज्ञा लेकर पांडव अपनी माता कुंती के पास गये। कुंती अपने पुत्रों को बहुत दिनों के बाद देखकर रोने लगी। उसे द्रौपदी के सभी पुत्रों के मारे जाने से बड़ा दुख था। इतने में उसने देखा कि द्रौपदी रोती हुई उनके पास पड़ी है। "हाय! अभिमन्यु सहित मेरे पुत्र कहां गये, उनके बिना राज्य किस काम का?" ऐसा कह द्रौपदी विलाप करने लगी। कुंती ने द्रौपदी को उठाकर धीरज बंधाया। उसके साथ शोक-पीड़ित गांधारी के पास गयी। उनके पीछे-पीछे पांडव भी गये। गांधारी ने बहू द्रौपदी और यशस्विनी कुंती से कहा–बेटी! शोक से व्याकुल न होओ। श्रीकृष्ण की राय न मानने पर विदुर ने बताया था कि इस कुल का विनाश होना है और वही हुआ।

गांधारी ने परिवार तथा सगे-संबंधियों के मृत शरीर के पास रोती हुई उनकी स्त्रियों को देखकर श्रीकृष्ण के सामने विलाप किया और अंत में कहा–कृष्ण! आज से छत्तीसवें वर्ष में तुम्हारे कुटुंबी, मंत्री, बंधु-बाधव आपस में लड़कर मर जायंगे और तुम सबसे बिछुड़कर अपरिचित और लोगों की आंखों से ओझल होकर अनाथ के समान जंगल में घूमोगे और किसी निंदित उपाय से मरोगे। भरतवंशी स्त्रियों के समान तुम्हारे कुल की स्त्रियां भी अपने पतियों की लाशों पर रो-रोकर गिरेंगी।

युधिष्ठिर की आज्ञा से सभी मृतकों का दाह-संस्कार कराया गया। सभी स्त्री-पुरुषों ने अपने मरे हुए संबंधियों को जलांजलि दी। कुंती ने बताया कि

कर्ण मेरे गर्भ से पैदा हुआ था। अतएव युधिष्ठिर ने उसके लिए शोक प्रकट किया तथा उसका प्रेत्य कर्म संपन्न किया।

युधिष्ठिर ने कुंती से कहा–माता! तुमने कर्ण का अपने से जन्म की बात छिपाकर हम लोगों को मार डाला। हम उसके लिए बहुत दुखी हैं। यदि हम यह बात पहले जानते तो कर्ण के समान हमारी कोई उपलब्धि नहीं होती और कौरव वंश का यह विनाश भी न होता।

युधिष्ठिर ने कर्ण के घर की सभी स्त्रियों को बुलवा लिया और उनके साथ कर्ण का प्रेत्यकर्म किया। युधिष्ठिर ने कहा–मैं यह रहस्य नहीं जान पाया, इसलिए मुझ पापी ने अपने बड़े भाई को मरवा दिया, इसलिए आज से स्त्रियों के मन में कोई गुप्त रहस्य छिपा नहीं रहेगा (अध्याय –)।

मीमांसा

घोर हिंसा के बाद, और ज्यादातर स्वजनों की हिंसा के बाद जो परिणाम होना था, वही हुआ। धृतराष्ट्र ने लौह-मूर्ति को हाथ से दबाकर तोड़ दिया, यह धृतराष्ट्र की बलवत्ता सिद्ध करने के लिए अतिशयोक्ति है। गांधारी का श्रीकृष्ण के लिए यह शाप भी चमत्कारी भाव लेकर है कि आज से छत्तीसवें वर्ष तुम्हारा यदुकुल नष्ट होगा। श्रीकृष्ण के उन्मादी परिवार का वह होना ही था, परंतु ठीक छत्तीसवें वर्ष के लिए उसे निर्धारित करना चमत्कारी कल्पना है। कर्ण-जैसे योग्य बड़े भाई का ठीक परिचय जान जाने पर उनके साथ जो कुछ किया गया है, उसको लेकर युधिष्ठिर का मानसिक ताप होना स्वाभाविक है और यह उनकी विशेषता है।

सद्गुरवे नमः

महाभारत मीमांसा

बारहवां : शांति पर्व
(राजधर्म खंड)

. युधिष्ठिर का कर्ण के विषय में अधिक शोक

पांडव, विदुर, धृतराष्ट्र और भरतवंशी संपूर्ण नारियों ने भी आकर गंगा में मृत लोगों की स्मृति में जलांजलियां प्रदान कीं। उसके बाद पांडवों ने आत्मशुद्धि के लिए गंगातट पर एक महीना निवास किया। युधिष्ठिर से मिलने के लिए अनेक ऋषि–महर्षि, विद्वान, ब्राह्मण, स्नातक तथा गृहस्थ आये।

नारद ने सहज प्रश्न किया–राजन युधिष्ठिर! आपने युद्ध में विजय पाकर पृथ्वी का राज्य पाया है। अब आप प्रसन्न तो हैं न? आपको कोई शोक तो नहीं है? युधिष्ठिर ने कहा–देवर्षि! मैंने राज्य के लोभ में पड़कर बंधु–बांधवों का संहार कर डाला। सुभद्रा–कुमार अभिमन्यु और द्रौपदी के पांच पुत्रों की हत्या को देखकर मुझे विजय नहीं, हार ही लगती है। सुभद्रा इस समय द्वारका में है। जब श्रीकृष्ण यहां से लौटकर वहां जायंगे, तब वह इनसे क्या कहेगी?

महाराज नारद! मेरी माता कुंती ने अब बताया है कि कर्ण उन्हीं के पेट से पैदा हुआ पहला पुत्र है। कुंती ने कर्ण का जन्म–रहस्य छिपाकर मुझे भयंकर दुख में डाल दिया है। कर्ण महा बली, बुद्धिमान, दयालु, दाता, संयमी, धृतराष्ट्र के पुत्रों के आश्रय दाता, स्वाभिमानी, पराक्रमी और अमर्षशील थे। वे हम लोगों के बड़े भाई थे। माता ने बताया कि कर्ण मेरा सर्वगुणसंपन्न पुत्र था जिसे मैंने पैदा होते ही पानी में फेंक दिया था, जिसे सूत अधिरथ तथा उसकी पत्नी राधा ने पाला। मैंने राज्य के लोभवश भाई के हाथ से भाई की हत्या करवा दी। हम लोग उनको अपने भाई के रूप में नहीं जानते थे, परंतु वे हमें जानते थे कि पांचों पांडव हमारे भाई हैं। सुना है कि माता कुंती ने कर्ण से मिलकर तथा उसे

अपना ज्येष्ठ पुत्र बताकर अपने पक्ष में आने के लिए कहा था, किंतु सत्यव्रती कर्ण इस बात को नहीं स्वीकारे। उन्होंने कहा कि मैं दुर्योधन तथा अपने पालक माता–पिता को धोखा नहीं दे सकता। माता! तुम्हारे पांच पुत्र युद्ध के बाद भी बने रहेंगे अर्जुन या कर्ण के साथ। मेरा युद्ध अर्जुन से होगा।

ऐसे सत्यनिष्ठ बड़े भाई कर्ण को अर्जुन ने मार डाला। मैंने भाई की हत्या करायी है, इसलिए मुझे घोर मानसिक वेदना है। जुआ–खेल के समय दुर्योधन की अत्यंत कड़वी बात से मुझे क्रोध आता था, किंतु कर्ण की कड़वी बात सुनकर भी क्रोध शांत हो जाता जब मैं उनके पैर देखता। कर्ण के दोनों पैर माता कुंती के पैरों के समान थे। मैं सोचता कि कर्ण के पैर कुंती माता के पैरों के समान क्यों हैं? परंतु समझ नहीं पाता था।

इसके बाद चमत्कारी प्रसंग जोड़कर नारद के मुख से कहलाया गया है कि द्रोणाचार्य ने कर्ण को ब्रह्मास्त्र की शिक्षा यह कहकर नहीं दी कि इसे ब्राह्मण और क्षत्रिय को ही दी जा सकती है, सूत–पुत्र को नहीं। इसके बाद कर्ण ने परशुराम से अपने को ब्राह्मण बताकर शिक्षा ग्रहण की। एक दिन परशुराम कर्ण की गोद में अपना सिर रखकर सो गये। कर्ण को एक विषैले कीड़े ने काटा, परंतु वे हिले–डुले नहीं। कर्ण के शरीर से रक्त बहकर जब परशुराम को लगा तब वे जग गये। परशुराम ने सोचा कि ब्राह्मण इतना सहनशील नहीं हो सकता है, यह कोई क्षत्रिय है। तब कुपित होकर उन्होंने कर्ण से सच कहने का आग्रह किया। कर्ण ने बता दिया कि मैं सूतपुत्र हूं। मैंने अस्त्र–ज्ञान के लोभ से अपने को ब्राह्मण बताया था। परशुराम ने कर्ण को शाप दिया कि तुम्हें समय आने पर ब्रह्मास्त्र का विस्मरण हो जायगा। दूसरी बात, कर्ण से भूलवश एक ब्राह्मण की गाय मारी गयी थी। अतः उसने शाप दिया था कि अंतिम युद्ध–काल में तुम्हारे रथ का पहिया जमीन में धंस जायगा। तीसरी बात, इंद्र ने ब्राह्मण का कपट वेष बनाकर कर्ण के जन्मजात कवच–कुंडल को मांग लिया था। इन कारणों से कर्ण विवश होकर मारा गया।

कर्ण परशुराम के पास से लौटकर दुर्योधन के पास रहते थे। किसी समय कलिंग–नरेश चित्रांगद की पुत्री का स्वयंवर था। वहां कर्ण की सहायता लेकर दुर्योधन इकट्ठे हुए राजाओं को जीतकर कलिंगराज की कन्या का अपहरण कर ले आया था।

मगध–नरेश जरासंध ने कर्ण के अद्‌भुत बल को देखकर उन्हें युद्ध के लिए ललकारा। कर्ण ने जरासंध को परास्त किया। अतएव जरासंध ने प्रसन्न होकर अंगदेश की मालिनी नगरी उन्हें दे दी। तभी से कर्ण अंगदेश के राजा हो गये थे।

यह सब सुनने के बाद युधिष्ठिर अधिक दुखी हो गये। कुंती ने उन्हें समझाया कि शोक छोड़ो। युधिष्ठिर ने स्त्री मात्र को शाप दिया कि आज से स्त्रियां अपने मन के गुप्त रहस्य को नहीं छिपा सकेंगी (अध्याय -)।

मीमांसा

वर और शाप पुराने पौराणिक ग्रंथों के मोहरे हैं जो असत्य हैं। जन्मजात कवच-कुंडल किसी के शरीर में नहीं होते। किसी के कहने से न किसी के रथ का पहिया जमीन में धंसता है और न उसे अपना शस्त्र-ज्ञान भूल जाता है। युधिष्ठिर के शाप से उस काल से स्त्रियां अपने गुप्त रहस्य को नहीं छिपा पाती हैं, यह झूठी बात है। जहां कहीं नर-नारी लोक-मर्यादा विरुद्ध संबंध करते हैं और स्त्री को गर्भ रह जाता है, तो उसे ही उसको छिपाने की आवश्यकता पड़ती है। पुरुष के लिए यह समस्या नहीं है; क्योंकि उसको गर्भ नहीं रहता। ऐसी स्थिति में स्त्रियां पहले रहस्य छिपाती थीं और आज भी छिपाने के लिए मजबूर हैं।

. युधिष्ठिर का वैराग्य-उद्‌गार; अर्जुन, भीम, नकुल तथा सहदेव का उन्हें समझाना

युधिष्ठिर कर्ण को याद कर दुख से पीड़ित हो शोक-मग्न हो गये और अर्जुन से बोले-अर्जुन! यदि हम द्वारका में जाकर अंधकवंशियों और वृष्णिवंशियों के यहां भीख मांगकर निर्वाह कर लेते, तो आज अपने कुटुंब को निर्वंश करके हम इस दुर्दशा को न प्राप्त होते। हमारे शत्रुओं की इच्छा पूर्ण हुई, क्योंकि वे हमारा विनाश देखकर प्रसन्न होंगे। कौरवों का प्रयोजन तो उनके जीवन के अंत होते ही समाप्त हो गया। हमने अपने लोगों को मारकर क्या उत्तम फल पाया? यह क्षत्रियों का घृणित कर्म धिक्कार के योग्य है। क्षमा, मन-इंद्रियों का संयम, अंतर-बाह्य शुद्धि, वैराग्य, ईर्ष्या का त्याग और सत्यभाषण वनवासियों का यह धर्म ही उत्तम है। हम लोभी लोग राज्य-सुख भोगने के भ्रम में पड़कर भयंकर दुर्दशा में पड़ गये हैं। अपने परिवार को मारकर या मरवाकर कैसा राज्य-सुख? हाय! हमने इस तुच्छ राज्य-सुख के भोग के लिए अवध्य गुरुजनों, स्वजनों तथा राजाओं की हत्याकर तथा बंधु-बांधव-हीन होकर दरिद्र की तरह जीवन बिताने के लिए बैठे हैं। मांस-लोभी कुत्तों की तरह हमारी दशा हुई है। जो लोग कामना, खीझ, हर्ष और अमर्ष

करके अपना संतुलन खो बैठते हैं, उन्हें विजय का सुख क्या मिलेगा?

हम लोगों ने कभी कोई बुराई नहीं की थी, तो भी राजा धृतराष्ट्र हमसे द्वेष रखते थे। उनकी बुद्धि हमें ठगने में ही लगी रहती थी। वे विनम्रता का दिखावा रखते थे। इस युद्ध में न कौरवों की कामना सफल हुई और न हमारी आकांक्षाएं पूरी हुईं। न हमारी जीत हुई और न उनकी। हम लोगों ने ज्योतित जीवन की सभी दिशाओं में आग लगा दी और अपने ही दोष से सदा के लिए नष्ट हो गये। हमने शूरवीरों को मारकर पाप किया और अपने ही देश का विनाश कर डाला। विपक्ष को मारकर हमारा क्रोध तो शांत हो गया, परंतु हम शोक से निरंतर जल रहे हैं।

धनंजय! स्वीकार लेने से अपना किया हुआ पाप नष्ट होता है। पश्चाताप करने से, शुभ कर्म करने से, तपस्या से, निवृत्तिपरायण होने से तथा धर्मशास्त्रों का अध्ययन करने से मन के पाप कटते हैं। श्रुति कहती है कि त्यागी मनुष्य पाप नहीं करता और जन्म–मरण के बंधन में नहीं पड़ता। उसे मोक्ष–पथ मिल जाता है। वह स्थिरबुद्धि तत्काल आत्मसाक्षात्कार कर लेता है। मैं तुम लोगों से विदा लेकर वन में चला जाना चाहता हूं। श्रुति–वचन है कि संग्रह–परिग्रह में फंसा हुआ मनुष्य आत्मसाक्षात्कार नहीं कर सकता। मैंने परिग्रह की इच्छा करके केवल पाप बटोरा है। परिग्रह से पाप ही प्राप्त हो सकता है। तुम पृथ्वी का शासन करो। मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है।

अर्जुन ने कड़ा रुख अपनाकर कहा–राजन! आपकी व्याकुलता की हद हो गयी है। आपने अपने परिश्रम से यह राज्य–लक्ष्मी पायी है। इसे आप अपनी अल्प बुद्धि का प्रर्दशन कर छोड़ने की बात करते हैं? यदि आपको वैराग्य ही करना था तो किसलिए इन राजाओं की हत्या की और करायी? दरिद्र मनुष्य ही भीख मांगकर खाता है। आप राज्य छोड़कर हाथ में खपड़ा लेकर भीख मांगते–खाते घूमेंगे तो लोग आपको क्या कहेंगे? यह सब आपका मोह मात्र है। सब कुछ त्यागकर अकिंचन हो जाना मुनियों का धर्म है, राजा का नहीं। राजा धन से संपन्न होता है। मुनि ही दूसरे दिन के लिए संग्रह न करके प्रतिदिन मांगकर खाता है। दरिद्रता पातक है। आप मेरे सामने उसकी प्रशंसा न करें। मुझे निर्धन और पतित में अंतर नहीं दिखता। धन से ही धर्म, काम और स्वर्ग की प्राप्ति होती है। धन के बिना तो जीवन का निर्वाह भी नहीं होता। यदि राजा दूसरे के धन का अपहरण नहीं करेगा तो वह धर्म का अनुष्ठान कैसे कर सकता है? देवताओं ने जाति–भाइयों से द्रोह करके ही स्वर्ग लोक के सभी स्थानों का अधिग्रहण किया है। देवता जिस उपाय से धन और राज्य पाना चाहे हैं वह

जाति-द्रोह के अलावा क्या है? राजा दूसरे का धन छीनकर ही धर्म करता है। हम किसी राजा के पास कोई भी ऐसा धन नहीं देखते जो दूसरे का अपकार करके न लाया गया हो। सभी राजा दूसरे को जीतकर कहते हैं कि 'यह मेरा है।' राजधर्म बड़ा धर्म है। जैसे समुद्र से जल आकाश में जाकर बादल रूप से सब तरफ बरसकर प्रजा का कल्याण करता है, वैसे राजा के भवन से धन प्रजा में फैलकर सबका कल्याण करता है। यह पृथ्वी दिलीप, नृग, नहुष, अंबरीष, मांधाता आदि के पास समय-समय से रही। अब आपके पास आयी है। अब आप इससे जनता की सेवा करें। राजा का यही सनातन मार्ग है। आप कुत्सित मार्ग का आश्रय न लें।

युधिष्ठिर ने भी कड़ा रुख अपनाकर कहा-अर्जुन! तुम अपने मन और कानों को भीतर एकाग्र कर लो, तब मेरी बात तुम्हें पसंद आयेगी। मैं त्याग-मार्ग पर चल सकता हूं, तुम्हारे आग्रह से भोग-मार्ग पर नहीं चल सकता। कल्याण-मार्ग क्या है, यह मुझ ज्ञानी से पूछो, केवल अस्त्र-शस्त्र बांधने वाले तुम इसे क्या जानो। यदि तुम मुझसे पूछना नहीं चाहते हो, तो बिना पूछे मुझसे सुनो। मैं गंवारों का सुख-भोग छोड़कर त्याग-मार्ग पर चलूंगा। मैं मूंड़-मुड़ा कर मुनि एवं संन्यासी हो जाऊंगा और वृक्ष के पास या शून्य-सदन में रहकर तप करूंगा। हर्ष-शोक से मुक्त रहूंगा। निंदा-स्तुति समान समझूंगा। आशा-ममता त्यागकर निर्द्वंद्व रहूंगा। कभी किसी वस्तु का संग्रह नहीं करूंगा। सदैव आत्मचिंतन करूंगा और प्रसन्न रहूंगा। किसी से बातचीत नहीं करूंगा। गूंगों, बहरों तथा अंधों की तरह रहकर न किसी से बोलूंगा, न किसी का सुनूंगा और न किसी को देखूंगा। सब प्राणियों को बचाकर चलूंगा। जीने की इच्छा और मरने का भय त्यागकर सबसे निष्काम रहूंगा। इस जन्म-मरण, जरा-व्याधि आदि वेदनाओं से भरे संसार का मोह त्यागकर प्रशांत रहूंगा। बड़े-बड़े सम्राट भी मर जाते हैं। अतएव मैं सारी स्पृहा त्यागकर शांत होकर विचरूंगा।

भीम ने अधिक उत्तेजित होकर कहा-राजन! जैसे अर्थ को समझे बिना तथा उसका आचरण किये बिना वेदपाठी की बुद्धि मारी जाती है, वैसे आपकी बुद्धि मारी गयी है। यदि राजधर्म त्यागकर आलस्यपूर्ण जीवन बिताना था, तो धृतराष्ट्र के पुत्रों तथा बहुत राजाओं और सेना को मारकर क्या फल हुआ? राजधर्म पर चलने वालों के मन में अपने भाई के लिए भी क्षमा, दया, कोमलता और करुणा नहीं रहती, फिर आपके हृदय में यह सब कैसे आ गये! यदि हम आपका यह विचार पहले जान पाते तो न अस्त्र-शस्त्र उठाते और न किसी की हत्या करते। हम भी आपकी तरह भीख मांगकर खाने का निश्चय कर लेते, फिर

यह भयंकर मार–काट होती ही नहीं। हम लोग निंदा के पात्र हैं जो कि आप जैसे मंदबुद्धि को बड़ा भाई मानकर आपके पीछे–पीछे चलते हैं। निर्धन नास्तिकों ने वेदों के अर्थवाद वाक्यों द्वारा सिद्ध किये हुए विज्ञान का सहारा लेकर सत्य प्रतीत होने वाले मिथ्या मत का प्रचार किया है। धर्म के नाम पर केवल अपना पेट भरते हुए मौनी बाबा बनकर बैठना कर्तव्य से भ्रष्ट होना है। जो परिवार–हीन, धन–हीन, अतिथि–सेवा करने से असमर्थ हो, उसे ही संन्यास लेना चाहिए। सदा ही वन में रहने वाले पशु, पक्षी, सुअर स्वर्ग लोक नहीं पाते हैं। श्रेष्ठ पुरुष केवल वनवास को पुण्य–कारक नहीं मानते। यदि राज्य–संन्यास से सिद्धि पा लें, तब तो पर्वत और वृक्ष सिद्ध ही हैं; क्योंकि ये सदा ब्रह्मचारी हैं। यदि केवल अपना पेट भरने से सिद्धि मिल जाती तो जानवरों को सिद्ध ही मानना पड़ेगा, क्योंकि वे केवल अपना ही पेट भरना जानते हैं।

अर्जुन ने कहा–राजा युधिष्ठिर! एक पुरानी कथा है कि संपन्न और कुलीन ब्राह्मण घर के कई नवजवान जिनको अभी दाढ़ी–मूंछ भी नहीं आयी थी, घर छोड़कर तथा मूड़ मुड़ाकर संन्यासी हो गये। वे माता–पिता, भाई–बंधु सबका त्याग कर दिये और वन में रहने लगे। वहां इंद्र एक सुंदर पक्षी का रूप धारणकर उनके पास आये, और उन्होंने उन मथमुंडे नवयुवक संन्यासियों से कहा–यज्ञशिष्ट अन्न का भोजन करने वाले धन्य हैं। संन्यासियों ने यह सुनकर इसमें अपनी बड़ाई समझी। इंद्र ने कहा–यह तुम लोगों की बड़ाई नहीं है। तुम लोग तो शरीर में कीचड़ और धूल लपेटे हुए विचरने वाले मूर्ख हो। वस्तुतः यज्ञ करने वाले गृहस्थी में रहकर वैदिक विधान से कर्म करने वाले ही श्रेष्ठ हैं। वे गृहस्थ में रहकर अतिथि–सेवा करते हैं। वे देव, पितर और ऋषियों की तृप्ति के लिए कर्म करते हैं और वैदिक मार्ग से चलते हैं। जो इस वैदिक मार्ग को त्यागकर मूड़ मुड़ाये संन्यासी बने घूमते हैं वे मूर्ख हैं। तप से कल्याण है और वैदिक कर्मकांड ही तप है। हवन द्वारा देवताओं को, स्वाध्याय द्वारा ब्रह्मर्षियों को तथा श्राद्ध द्वारा पितरों को तृप्त कर गुरु की सेवा करना दुष्कर व्रत है। मैं मानता हूं कि तपस्या श्रेष्ठ व्रत है, परंतु गृहस्थ धर्म पालन करना ही दुष्कर व्रत और बड़ा तप है। गृहस्थ धर्म में ही सारी तपस्या प्रतिष्ठित है। जो किसी के प्रति ईर्ष्या नहीं करता और द्वंद्वरहित रहता है, वह तपोनिष्ठ है। जो गृहस्थ देवताओं, पितरों, अतिथियों तथा परिवार के लोगों को खिलाकर खाता है, वह विघसाशी (यज्ञ से बचे हुए अन्न का भोजन करने वाला) है। इस प्रकार वे धर्म में दृढ़ हो उत्तम व्रत का पालन तथा सत्यभाषण करते हुए जगद्गुरु होकर सर्वथा संदेहरहित हो जाते हैं। ईर्ष्या–रहित होकर धर्म का पालन करने वाला स्वर्ग को प्राप्त होता है।

इंद्र की उपर्युक्त बातें सुनकर वे ब्राह्मण कुमार संन्यास-मार्ग छोड़कर घर-गृहस्थी में चले गये।

नकुल ने कहा–राजा युधिष्ठिर! जो वेदों की आज्ञा के विरुद्ध चलते हैं वे महा नास्तिक हैं। गृहस्थ आश्रम सब आश्रमों से ऊंचा है। वेदों के ज्ञाता यही कहते हैं। जो धन से यज्ञ करता है और अपने मन को वश में रखता है, वह सच्चा त्यागी है। जिसने गृहस्थी का सुख लिए बिना वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम में रहकर देह त्याग दिया, उसका तामस त्याग है। जो घरबार छोड़कर विचरता है, कहीं चुपचाप पेड़ के नीचे सो जाता है, अपने लिए भोजन भी नहीं बनाता है, मांगकर खाता है और सदा योगपरायण रहता है, वह भिक्षु कहलाता है। जो क्रोध, हर्ष तथा चुगुली त्यागकर सदैव वेदाध्ययन में लगा रहता है, वह ब्राह्मण त्यागी कहलाता है। कहते हैं कि एक बार मनीषी पुरुषों ने तराजू (विवेक) के एक पलड़े पर केवल गृहस्थ आश्रम को रखा तथा दूसरे पलड़े पर ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम को रखा, तो गृहस्थ आश्रम ही अधिक वजनदार तथा महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ, क्योंकि इसमें भोग और स्वर्ग दोनों मिलते हैं। जो ऐसा भाव रखता है वही त्यागी है। मूर्ख की तरह घर छोड़कर इधर-उधर भटकने वाला त्यागी नहीं है। यदि वन में रहकर और साधुवेष में रहकर मन में काम-वासना रखे, तो उसके गले में यम का फंदा ही है। अभिमान त्यागकर कर्म करने से उसका फल उत्तम होता है। शम, दम, धैर्य, सत्य, शौच, सरलता, यज्ञ, धृति तथा धर्म ऋषि को सदैव पालनीय है।

सहदेव ने कहा–राजा युधिष्ठिर! केवल बाहरी धन त्याग देने से सिद्धि नहीं मिलती। शरीर संबंधी चीजें त्याग देने पर भी सिद्धि मिलती है कि नहीं, इसमें संदेह है। भीतर विषय-सुख की इच्छा रखकर बाहरी त्याग करना तो अनर्थ है; परंतु सब आसक्ति त्यागकर प्रजा का पालन तथा शासन करना कल्याणकारी है।

"दो अक्षरों का 'मम' मृत्यु है और तीन अक्षरों का 'न-मम' अमृत है, सनातन ब्रह्म है।" इसलिए मृत्यु और अमृत दोनों अपने ही भीतर स्थित है। ये ही प्राणियों में अदृश्य रूप में रहकर उन्हें लड़ाते हैं। यदि गृहस्थी का त्याग ही धर्म है तो पुराने स्वायंभुव मनु तथा अन्य चक्रवर्ती नरेशों ने राज्य का पालन क्यों किया? अधिकतम मनुष्यों का बाहरी स्वभाव कुछ और होता है तथा

. **द्वयक्षरस्तु भवेन्मृत्युस्त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम्।**
ममेति च भवेन्मृर्त्युन ममेति च शाश्वतम्

(महाभारत, शांति पर्व, अध्याय , श्लोक)

भीतरी कुछ और, उसे समझें। जो परमात्मा को सबके भीतर बैठा देखता है वह भय से मुक्त हो जाता है।

वन में रहकर फल-मूल खाने वाले के मन में यदि सांसारिक वस्तुओं में ममता बनी है, तो वह मौत के ही मुख में है। प्रभो! आप मेरे पिता, माता, भ्राता और गुरु हैं। मैंने आर्त होकर जो प्रलाप किये हैं, उसके लिए क्षमा करें। मैंने जो कुछ कहा है वह झूठ हो या फुर, आपके प्रति भक्ति होने से कहा है (अध्याय -)।

मीमांसा

नवयुवक संन्यासियों तथा पक्षी रूप इंद्र का संवाद बौद्ध भिक्षुओं को लक्ष्य में रखकर कहा गया है। नकुल से कहलाया गया है–"जो वेदों की आज्ञा के विरुद्ध चलते हैं, उन्हें महान नास्तिक समझिए–*वेदवादापविद्धांस्तु तान् विद्धि भृशनास्तिकान्* (,)।" तथा जो घर-रहित, इधर-उधर विचरने वाला, चुपचाप किसी वृक्ष के नीचे सोने वाला, अपना भोजन न बनाने वाला, योग परायण है, ऐसा त्यागी *भिक्षुकः* (,) भिक्षु है, यह सब बौद्ध संन्यासियों को दृष्टि में रखकर कही गयी बात है।

. द्रौपदी, अर्जुन और भीम का राजधर्म पर जोर, किंतु युधिष्ठिर का त्याग-धर्म का आग्रह

द्रौपदी ने कहा–राजन! आपके वैरागी-वचन सुनकर आपके भाई सूख गये हैं। वे पपीहा की तरह आपसे राज्य करने की रट लगा रहे हैं। समस्त प्राणियों से मैत्री भाव, दान लेना-देना, अध्ययन, तपस्या यह ब्राह्मणों का धर्म है, क्षत्रिय का नहीं। क्षत्रिय का धर्म है कि वे दुष्टों का दमन करें और सज्जनों तथा प्रजा का पालन करें। जो क्षमा और क्रोध दोनों करता है, दान देता है, कर लेता है, शत्रुओं को भय देता है, शरणागतों को अभय देता है, दुष्टों को दंड देता है और दीनों की रक्षा करता है, वह धर्मज्ञ क्षत्रिय है। आपको यह राज्य न शास्त्र-श्रवण से मिला है, न दान में, न किसी को समझा-बुझाकर, न यज्ञ कराने से तथा न भीख मांगने से मिला है। आपने अपने बाहुबल से इसे प्राप्त किया है। मैं संसार की समस्त नारियों में अधम हूं जो कि पुत्रों से हीन हो जाने पर जीवित रहना चाहती हूं। आप मेरी बातों पर ध्यान दें।

अर्जुन अबकी बार युधिष्ठिर का आदर करते हुए दंड अर्थात शासन करने पर जोर देते हैं। वे कहते हैं–राजन! राज दंड के भय से पापी पाप नहीं करते,

दंड के भय से एक दूसरे को खा नहीं जाते। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी सब दंड के भय से अपने-अपने मार्ग में चलते हैं। जीविका में शुद्ध अहिंसा कहां है? नेवला चूहे को खाता है, नेवले को बिलाव खा जाता है, बिलाव को कुत्ता और कुत्ते को चीता खा जाता है और मनुष्य सबको खा जाता है। अतएव राजन! आप क्षत्रिय हैं, क्षत्रिय कर्म करें।

अर्जुन ने आगे कहा–जिनमें हर्ष और क्रोध दोनों नहीं रह गये हैं, वे क्षत्रिय वन में तपस्या करें, परंतु बिना हिंसा किये वे भी अपना जीवन-निर्वाह नहीं कर सकते। जल में बहुत जीव हैं, वृक्षों के फलों में जीव होते हैं। कितने सूक्ष्म जीव हैं जिन्हें अनुमान से जाना जा सकता है। पलक मारने से ऐसे जीव मर जाते हैं। कितने मुनि गांव छोड़कर वनवासी हो जाते हैं, परंतु वे वहीं गृहस्थ बन जाते हैं। अतएव आपको घर में रहकर अनासक्तिभाव से प्रजा पर शासन करना चाहिए। जैसे बड़ी मछलियां छोटी मछलियों को खा लेती हैं, वैसे बलवान मनुष्य दुर्बलों को खा लेना चाहते हैं। यदि शासन एवं दंड न हों, तो प्रजा सुख से नहीं रह सकती। अच्छी तरह प्रयोग में लाया हुआ दंड प्रजा की रक्षा करता है। जो वेदों की निंदा करने वाले नास्तिक मनुष्य हैं वे मर्यादा (वर्णव्यवस्था) को नष्ट करते हैं, वे भी दंड मिलने पर सीधे हो जाते हैं। सभी मनुष्य दंड के भय से रास्ते पर चलते हैं। संसार में बिलकुल शुद्ध मनुष्य बहुत थोड़े हैं। बिना दंड दिये ऊंट, बैल, घोड़े, खच्चर तथा गधे रथों में जोत देने पर भी बोझे को यथास्थान नहीं पहुंचा सकते। दंड के बिना सेवक स्वामी की बात, बालक माता-पिता की बात नहीं मान सकते।

सर्वथा हिंसा न की जाय अथवा दुष्ट की हिंसा की जाय, इस प्रश्न पर यही उत्तर है कि जिसमें धर्म की रक्षा हो वही श्रेष्ठ कार्य है। कोई मनुष्य बहुतों को लूटता और मारता है तो उसे मार देना ही धर्म की रक्षा है। कोई वस्तु केवल गुणहीन नहीं होती और कोई वस्तु केवल गुण वाली नहीं होती। सभी कार्यों में अच्छाई-बुराई है। मनुष्य बैलों के अंडकोश काटकर या उसकी नस तोड़कर उसे बधिया बना देते हैं और उनसे काम लेते हैं। हे राजन! आप यज्ञ कीजिए, दान दीजिए और प्रजा की रक्षा कीजिए।

भीम ने कहा–राजन! आप स्वयं ज्ञानी तथा सदाचारी हैं। हम आपको सीख नहीं दे सकते। मैंने कई बार निश्चय किया कि अब नहीं बोलूंगा–नहीं बोलूंगा, परंतु अधिक दुख होने पर बोलना पड़ता है। आपके इस मोह से हम सब संशय में पड़ गये हैं। मनुष्य के जीवन में दो प्रकार की व्याधियां होती हैं; एक शारीरिक दूसरी मानसिक, और ये प्रायः एक दूसरे से उत्पन्न होती हैं। कभी

शारीरिक व्याधि से मानसिक व्याधि होती है और कभी मानसिक व्याधि से शारीरिक व्याधि होती है। जो मनुष्य बीते हुए शारीरिक या मानसिक दुख के लिए बारंबार शोक करता है वह एक के बाद दूसरे में फंसता जाता है। उसे दोहरे अनर्थ भोगने पड़ते हैं। आप आज तक मनुष्यों से युद्ध किये हैं, किंतु आज आपको अपने मन से युद्ध करना है। इस युद्ध में न अस्त्र–शस्त्र की आवश्यकता है और न बाहरी सहायकों की। इसमें तो स्वतः अपने मन से आपको अकेला लड़ना है। यदि मन पर विजय नहीं किये, तो आप पता नहीं कहां पहुंच जायंगे, और यदि मन को जीत लिए तो कृतार्थ हो जायंगे। आप राज्य का शासन सम्हालिए। हम सब भाई श्रीकृष्ण सहित आपके आज्ञापालक रहेंगे।

युधिष्ठिर ने कहा–भीम! असंतोष, प्रमाद, मद, राग, अशांति, बल, मोह, अभिमान और उद्वेग आदि तुम्हारे मन में भरे हैं, इसलिए तुम ऐसा कहते हो। ममता, कामना और आसक्ति त्यागकर सुखी एवं शांत हो जाओ। सम्राट के पास भी केवल एक ही पेट होता है। इच्छाएं न एक दिन में पूरी होंगी, न महीनों में और न पूरे जीवन में। इच्छा अपूरणीय है। इच्छा की आग तो तभी बुझती है जब भोग की आहुति उसमें न डाली जाय। काम–भोग निंदनीय है, त्याग ही सुखद है। विषयों के त्याग से संतोष मिलता है। ये भोगी राजा कभी संतुष्ट नहीं होते। त्यागी संत ही कृतार्थ होते हैं। इच्छाओं के पीछे बड़ी–बड़ी प्रवृत्तियों में न पड़ो। आशा–ममता त्यागकर शोक–रहित पद प्राप्त करो। सारे भोगों को छोड़ देने पर मिथ्या प्रलाप से मुक्त हो जाओगे। तपस्या, ब्रह्मचर्य और स्वाध्याय के बल से अविनाशी पद मिलता है जिसमें मृत्यु का भय नहीं है। ममता एवं आसक्ति आमिष है। वैसे सकाम कर्म आमिष है। इनसे सर्वथा मुक्त होना परम पद की प्राप्ति है। जनक ने कहा था 'दूसरों के ख्याल से मेरे पास बहुत धन है, परंतु उसमें से कुछ भी मेरा नहीं है। सारी मिथिला आग लगकर जल जाय तो भी मेरा कुछ नहीं जलता।'

युधिष्ठिर ने आगे कहा–"जैसे पर्वत पर चढ़ा मनुष्य धरती पर खड़े मनुष्यों को केवल देखता है, उनकी परिस्थितियों से प्रभावित नहीं होता, वैसे प्रज्ञा के भवन पर स्थित मनुष्य शोक करने वाले मंदबुद्धि मनुष्यों को केवल देखता है, परंतु उनकी भांति दुखी नहीं होता।"

. **प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोचञ्शोचतो जनान्।**
जगतीस्थानिवाद्रिस्थो मन्दबुद्धीनवेक्षते शांति पर्व, अध्याय श्लोक

"जो मनुष्य द्रष्टा होकर तटस्थ भाव से इस दृश्य प्रपंच को देखता है, वही आंख वाला है और प्रज्ञावान है। अज्ञात तत्त्वों का ज्ञान एवं सम्यक बोध कराने से अंत:करण की एक विशेष प्रकार की वृत्ति को प्रज्ञा कहते हैं।"

शुद्धात्मा ज्ञानियों-जैसे बोलने वाले अधूरे लोगों को अपने ज्ञान पर बड़ा अभिमान होता है। जो समस्त प्राणियों को ब्रह्मस्वरूप समझता है वही कृतार्थ होता है। प्रज्ञावान तपस्वी ज्ञानी ही उस अवस्था को प्राप्त होते हैं, केवल वाचिक ज्ञान बघारने वालों को यह दशा नहीं मिलती (अध्याय -)।

मीमांसा

अर्जुन की अहिंसा की आलोचना में कही हुई बातें जैन-मुनियों की अहिंसा संबंधी अतिवाद पर निर्देश करती हैं; और उनके द्वारा जब यह कहा जाता है कि दंड से ही वेदनिंदक नास्तिक भी ठीक होकर मर्यादा (वर्णव्यवस्था) में रह सकते हैं, तब यह बौद्ध भिक्षुओं पर निर्देश करता है। बौद्ध भिक्षु हिंसाप्रधान यज्ञ का विरोध करते थे, इससे ब्राह्मण-पुरोहित उन्हें वेद-निंदक करार देते थे। वस्तुत: ब्राह्मण-पुरोहितों के पेट-धंधा पर आघात पड़ता था। *'प्रज्ञाप्रासादमारुह्य...* श्लोक जो यहां आया है, इसका भाव बुद्ध वचन के शीर्ष स्थानीय 'धम्म पदम्' की गाथा में इस प्रकार आया है–

पमादं अप्पमादेन यदा नुदति पण्डितो।
पञ्ञापासादमारुह्य असोको सोकिनिं पजं
पब्बतट्ठो' व भूमट्ठे धीरो बाले अवेक्खति ,

अर्थात जब विवेकवान अ-प्रमाद से प्रमाद को दूर खदेड़ देता है, तब वह धीर पुरुष शोक-रहित होकर और प्रज्ञा के प्रासाद पर चढ़कर विमोहित शोकाकुल प्रजा को वैसे देखता है जैसे पर्वत पर स्थित मनुष्य पृथ्वी के धरातल की वस्तुओं को।

. अर्जुन का युधिष्ठिर को समझाना और उनका उत्तर

अर्जुन ने युधिष्ठिर को राजा जनक तथा उनकी रानी का एक उपाख्यान सुनाना आरंभ किया–एक समय राजा जनक ने राज्य छोड़कर केवल भिक्षा से

. **दृश्यं पश्यति य: पश्यन् स चक्षुष्मान् स बुद्धिमान्।**
अज्ञातानां च विज्ञानात् सम्बोधाद् बुद्धिरुच्यते

(शांति पर्व, अध्याय)

जीवन–निर्वाह लेते हुए साधना करने का निश्चय कर लिया। राजा जनक मूढ़ बन गये। वे धन, परिवार, राज–काज, हवन–यज्ञ आदि त्यागकर अकिंचन हो गये। उन्होंने भिक्षु–वृत्ति अपना ली और वे मुट्ठी भर भुना हुआ जौ खाकर रहने लगे। उनके मन की चेष्टाएं तथा ईर्ष्या समाप्त हो गयीं। वे निर्भय स्थिति में थे। रानी को उन पर कोप हुआ और उन्होंने कहा–राजन! आपने राज्य छोड़ कटोरा लेकर भीख मांगने का धंधा कैसे अपना लिया? यह मुट्ठी भर जौ खाना आपको शोभा नहीं देता। आपकी प्रथम प्रतिज्ञा थी प्रजा–पालन, परंतु अब आपकी चेष्टा दूसरी दिखायी देती है। मुट्ठी भर जौ से आप देवताओं, ऋषियों, पितरों तथा अतिथियों का भरण–पोषण नहीं कर सकते। अतएव आपका यह परिश्रम व्यर्थ है। आप घर छोड़कर अकर्मण्य क्यों हो रहे हो? वेदज्ञ ब्राह्मणों तथा प्रजा का पोषण करने वाले आप स्वयं उन्हीं से अपना भरण–पोषण चाहते हैं। इस जगमगाती हुई राज्यलक्ष्मी को त्यागकर कुत्ते की तरह घर–घर टुकड़ा के लिए भटकते हैं। आपके जीते जी माता पुत्रहीन तथा मैं अभागिनी कौशल्या पतिहीन हो गयी। ये धर्म की इच्छा रखने वाले क्षत्रिय जो आपका मुंह जोहते हैं, इन्हें अपनी सेवा का फल चाहिए।

रानी ने आगे कहा–राजन! मोक्ष पाना संशयास्पद है। प्राणी प्रारब्ध के अधीन है। ऐसी दशा में धन चाहने वाले सेवकों को निराश कर आप पता नहीं किस लोक में जायंगे। जो आप अपनी पत्नी का त्यागकर अकेला जीवन बिताना चाहते हैं इससे आप पापग्रस्त हो गये हैं। अतएव आपके लिए लोक–परलोक दोनों सुखरहित होंगे। आप ऐश्वर्य छोड़कर किसलिए दरिद्र बने घर–घर भटकना चाहते हैं? आप सभी प्राणियों के लिए विशाल प्याऊ तथा फलदार वृक्ष के समान हैं जिससे सब प्राणी अपनी प्यास तथा भूख मिटाना चाहते हैं। परंतु आज आप स्वयं रोटी के लिए दूसरे के सामने हाथ फैला रहे हैं। यदि हाथी भी चेष्टाहीन होकर एक जगह पड़ जाय, तो उसे छोटे कीड़े खा जायंगे। फिर पुरुषार्थहीन आप–जैसे मनुष्यों की क्या बिसात है? यदि कोई तुम्हारी कूड़ी (पात्र) फोड़ दे, त्रिदंड उठा ले जाय और तुम्हारे कपड़े छीन ले जाय, तो तुम्हारे मन की क्या दशा होगी?

रानी ने आगे कहा–आप सब कुछ छोड़कर मुट्ठी भर जौ तो चाहते हैं, तो राजकाज ने क्या अपराध किया था जो उसे छोड़ दिये? यदि मुट्ठी भर जौ पाने की आवश्यकता बनी रह गयी, तो आपके सर्वत्याग की बात खोखली हो गयी। सर्वत्यागी के लिए न मैं आपकी हूं और न आप मेरे हैं। फिर आपकी मुझ पर कृपा ही क्या? यदि आपकी मुझ पर कृपा है तो आप राजमहल में रहिए और

ऐश्वर्य का उपभोग कीजिए। मुझे आप बताइए, दान देने वाला बड़ा है कि दान लेने वाला? सदा मांगने वाले दंभी को किया हुआ दान दावाग्नि में की हुई आहुति के समान व्यर्थ है। जैसे आग ईंधन को पूरा जलाये बिना नहीं बुझती, वैसे सदैव मांगने वाला ब्राह्मण कभी शांत नहीं होता– *सदैव याचमानो हि तथा शाम्यति न द्विजः* (,)। दाता का अन्न ही साधुओं की जीविका का आधार है। यदि दान करने वाला राजा न हो तो मोक्ष की इच्छा रखने वाले साधु-संन्यासी कैसे जी सकते हैं? गृहस्थों के अन्न से ही भिक्षुओं (साधुओं) का निर्वाह होता है। अन्न से ही प्राणशक्ति स्थिर रहती है, अतएव अन्नदाता प्राणदाता है।

रानी ने आगे कहा–जितेंद्रिय संन्यासी गृहस्थी से अलग होकर भी गृहस्थों के सहारे ही जीते हैं। ये संन्यासी गृहस्थों से ही पैदा हुए होते हैं और उन्हीं से प्रतिष्ठा पाते हैं।

"केवल त्याग से, मूढ़ता से और भीख मांगने से किसी को भिक्षु नहीं समझना चाहिए। जो सरलता से स्वार्थ का त्याग करता तथा सुख में आसक्त नहीं होता, उसे ही भिक्षु समझना चाहिए।"

"राजन! जो आसक्त के समान दिखते हुए अनासक्त होकर विचरता है, जो संग-रहित है और जिसने सारे बंधनों को तोड़ दिया है और शत्रु-मित्र में जिसका समान भाव है, वह सदैव मुक्त ही है।"

"बहुत लोग भीख मांगने के लिए मूड़-मुड़ाकर और काषाय वस्त्र पहनकर घर से निकल जाते हैं। वे अनेक बंधनों में बंधे हुए व्यर्थ भोगों की तलाश में भटकते रहते हैं।"

"ऐसे बहुत-से मूर्ख होते हैं जो तीनों वेदों का अध्ययन, खेती, गोपालन तथा व्यापार और परिवार का त्यागकर त्रिदंड और भगवा वस्त्र धारणकर लेते हैं।"

. **त्यागान्न भिक्षुकं विद्यान्न मौढ्यान्न च याचनात्।**
ऋजुस्तु योऽर्थंत्यजति न सुखं विद्धि भिक्षुकम्

. **असक्तः सक्तवद् गच्छन् निःसंगो मुक्तबन्धनः।**
समः शत्रौ च मित्रे च स वै मुक्तो महीपते

. **परिव्रजन्ति दानार्थं मुण्डाः काषायवाससः।**
सिता बहुविधैः पाशैः संचिन्वन्तो वृथामिषम्

. **त्रयीं च नाम वार्तां च त्यक्त्वा पुत्रान् व्रजन्ति ये।**
त्रिविष्टिब्धं च वासश्च प्रतिगृह्णन्त्यबुद्धयः

"यदि मन का कषाय (राग–द्वेष) दूर न हुआ तो काषाय (गेरुए) वस्त्र धारण करना दैहिक इच्छा की पूर्ति के लिए समझना चाहिए। मेरे विचार से धर्म का ढोंग करने वाले मुंडियों के लिए यह जीविका चलाने का धंधा मात्र है।"

हे राजन! तुम इन साधुओं को वस्त्र, मृगचर्म, वल्कल एवं अन्य वस्तुएं देकर पुण्य कमाओ। स्वयं मुड़िया बनकर न भटको।

अर्जुन ने कहा–रानी के समझाने पर जनक ने संन्यास का विचार छोड़ दिया। अतएव हे राजन! आप भी संन्यास का विचार छोड़कर राज–काज सम्हालिए।

युधिष्ठिर ने कहा–अर्जुन वेदों में दोनों बातें आती हैं, कर्म करो और कर्म छोड़ो। धर्म और ब्रह्म का प्रतिपादन करने वाले अपर और पर–दोनों प्रकार के शास्त्रों को मैं जानता हूं। इन पर मैंने युक्तिपूर्वक विचार किया है। अर्जुन तुम तो अस्त्र–शस्त्र विद्या के पंडित हो और लड़ना–भिड़ना जानते हो। शास्त्रों की बातें तुम कुछ नहीं जानते हो। जो लोग शास्त्रों के ज्ञाता हैं वे भी मुझे उपदेश नहीं दे सकते। यदि तुम धर्म पर ध्यान रखते हो तो मेरे कथन की सत्यता का अनुभव करोगे। तुमने भाईचारे के नाते मुझसे जो बातें कहीं मैं उसके नाते प्रसन्न हूं।

हे अर्जुन! धर्म का रहस्य गूढ़ है। उसमें तुम्हारा प्रवेश होना बहुत कठिन है। मैं धर्म को समझता हूं कि नहीं, ऐसी आशंका तुम्हें नहीं होना चाहिए। तुम युद्ध-निपुण हो। तुमने कभी वृद्ध पुरुषों का सेवन नहीं किया है। इसलिए तुम्हें धर्म का पता नहीं है। अनुभवी बताते हैं कि तप, त्याग और आत्मलीनता, इनमें उत्तरोत्तर वाले श्रेष्ठ हैं। तुम धन को प्रधान मानते हो, परंतु धन प्रधान नहीं है। प्याज के छिलके निकालते जाइए तो अंत में कुछ नहीं मिलता है, वैसे जगत सारहीन है। आत्मा अज्ञान के आवरण से ढका है। मनुष्य तृष्णा और कर्म प्रपंच को त्यागकर तथा धन–जन का मोह छोड़कर सुखी हो सकता है। इस उत्तम–मार्ग को छोड़कर तुम धन की प्रशंसा करते हो। तपस्या, आत्म–ज्ञान और देहस्वार्थ त्याग से परम पद मिलता है (अध्याय –)।

मीमांसा

यहां जनक के उपाख्यान के बहाने लेखक ने बौद्ध भिक्षुओं पर प्रहार किया है। इस भाव को नरम करने के लिए दंडी संन्यासियों का भी नाम ले लिया गया है। धम्मपदं की बुद्ध–वाणी की छाप इस प्रसंग में अच्छी तरह से आयी है।

. **अनिष्कषाये काषायमीहार्थमिति विद्धि तम्।**
धर्मध्वजानां मुण्डानां वृत्त्यर्थमिति मे मतिः

(शांतिपर्व, अध्याय)

वासुदेवशरण अग्रवाल भी लिखते हैं–"महाभारत के ये कुछ श्लोक बौद्ध-जैसे साधुओं पर भागवतों का प्रहार है और अर्जुन के चलाये हुए मूल प्रसंग में यह पीछे से जोड़ा गया अंश है।"

. युधिष्ठिर की घोर ग्लानि, देवस्थान, वेदव्यास तथा श्रीकृष्ण का समझाना

देवस्थान नाम के एक विद्वान ने युधिष्ठिर को समझाना शुरू किया। उन्होंने कहा–राजा युधिष्ठिर! अर्जुन ने जो धन की महत्ता बतायी है मैं भी उसके विषय में कुछ कहना चाहता हूं। तुमने इस पृथ्वी को युद्ध में जीता है, अब इसका त्याग करने की बात मुझे व्यर्थ लगती है। तुम राजगद्दी पर बैठकर यज्ञ करो, दान दो। स्वाध्याय और ज्ञानयज्ञ तो ऋषि लोग किया ही करते हैं। आपको मालूम होना चाहिए कि कोई कर्म को प्रधानता देता है, कोई तप को। वैखानस लोग धन को महत्त्व नहीं देते। वे कहते हैं कि धन को अधिक महत्त्व देने से मनुष्य घोर पाप करने लगता है। वस्तुतः धन का उपयोग यज्ञ में करना चाहिए।

देवस्थान ने आगे कहा–संतोष का आना स्वर्ग से बढ़कर उपलब्धि है। जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है, वैसे जब मनुष्य अपने मन को सब तरफ से समेटकर पूर्ण निष्काम हो जाता है, तब आत्मा अपने आप में ज्योतित हो जाता है। ऐसी अवस्था में उसे न किसी से भय होता है और न उससे अन्य को भय होता है। वह काम तथा द्वेष से मुक्त होकर आत्मसाक्षात्कार की स्थिति में रहता है। जब मनुष्य न किसी से वैर करता है और न किसी की कामना करता है, तब वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

कुछ लोग प्रेमपूर्ण बरताव की प्रशंसा करते हैं, कुछ लोग परिश्रम करने को श्रेय देते हैं। कुछ लोग दोनों की प्रशंसा करते हैं। कुछ लोग यज्ञ की प्रशंसा करते हैं तो कुछ लोग संन्यास की प्रशंसा करते हैं। कुछ लोग दान करने की प्रशंसा करते हैं। कुछ लोग सब कुछ छोड़कर तथा मौन होकर ध्यान में लगे रहने को ही अच्छा मानते हैं। कुछ लोग मारकाट करके शत्रु पर विजय करने की बड़ाई करते हैं, तो कुछ लोग एकांत में रहकर आत्मचिंतन करने को श्रेय देते हैं।

उपर्युक्त बातों पर विचारकर मनीषीजन इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वही

. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**

धर्म उत्तम है जिसमें किसी प्राणी को दुख देने की बात नहीं रहती। किसी से वैर न करना, सभी प्राणियों की सेवा करना, सबके प्रति दयाभाव रखना, मन और इंद्रियों का संयम करना, अपनी पत्नी में सीमित रहना, कोमलता, लज्जा और शांति को अपनाना, यह उत्तम धर्म है, ऐसा स्वायंभुव मनु ने कहा है।

युधिष्ठिर! तुम भी इस गृहस्थ–धर्म का पालन करो। राजसिंहासन पर रहकर अपने मन–इंद्रियों का संयम रखो। प्रिय–अप्रिय में समता रखो। यज्ञ से बचे हुए अन्न का भोजन करो। दुष्टों का दमन तथा सज्जनों का पालन करो। प्रजा को धर्म में आरूढ़ कर स्वयं धर्म का पालन करो। जीवन के अंतिम हिस्से में पुत्र को गद्दी देकर वन में जाकर कंद–मूल का आहार करते हुए तपस्यापूर्वक जीवन बिताओ। वहां भी जीवन का आचरण शास्त्रों की आज्ञा के अनुसार ही करो। यदि ब्राह्मण भी क्षत्रिय–धर्म के अनुसार जीवन व्यतीत करता है, तो उसका जीवन उत्तम ही है, क्योंकि ब्राह्मण से ही क्षत्रियों की उत्पत्ति है। नरेश! आप शोक–संताप छोड़कर क्षत्रियोचित कर्म करने के लिए तैयार हो जाइए। क्षत्रिय का हृदय तो वज्र की तरह कठोर होता है।

इसके बाद वेदव्यास ने समझाना शुरू किया। उन्होंने कहा–तुम अर्जुन की बात मानो। शास्त्रों का धर्म गृहस्थ आश्रम पर ही टिका है। तुम्हारा गृहस्थ आश्रम छोड़कर वन में जाना ठीक नहीं है। देवता, पितर, अतिथि, नौकर, पशु–पक्षी तथा अन्य प्राणी गृहस्थ आश्रम से ही जीवन–निर्वाह करते हैं। गृहस्थ आश्रम ऐसा है जिसका समुचित पालन करना कठिन है।

वेदव्यास ने शंख और लिखित दो तपस्वी भाइयों का उदाहरण देकर क्षत्रिय धर्म–दंड धारण करना, शासन करना बताया; मूड़ मुड़ाकर संन्यासी बनना नहीं। उन्होंने कहा–युधिष्ठिर! भाइयों के साथ राज्य का शासन करो, पीछे वन को चले जाना।

युधिष्ठिर ने वेदव्यास से कहा–मुने! पति और पुत्रों से रहित हुई युवतियों का घोर रुदन और विलाप सुनकर मुझे शांति नहीं मिल रही है और न राजसुख भा रहा है।

वेदव्यास ने कहा–मरे हुए मनुष्य न किसी कर्म से और न चिंता करने से लौट सकते हैं और न कोई ऐसा दाता है कि उन्हें लाकर दे दे। समय से ही संसार के सब काम होते हैं। समय आयेगा और यह घाव भर जायगा। युधिष्ठिर! मैं तुम्हें पुरानी बातें सुनाऊं। एक राजा थे सेनजित। शोक से विह्वल होकर उन्होंने अपने उद्‌गार प्रकट किये थे, उन्हें मैं तुम्हें सुनाता हूं। उन्होंने कहा था–यह भयंकर काल–चक्र सबको पीसकर रख देता है। एक दिन सब राजा

मर जाते हैं। लोग दूसरों को मारते हैं। एक दिन उन्हें दूसरे मारते हैं। लोग स्वजनों के मरने पर तथा धन नष्ट होने पर हाय-तोबा मचाते हैं। तुम मूर्ख बने शोक क्यों करते हो? मरे हुए लोगों के विषय में क्यों बारंबार सोचते हो? शोक करने से दुख में दुख और भय में भय बढ़ता है। यह शरीर मेरा नहीं है। यह पृथ्वी मेरी नहीं है। और जैसी मेरी है वैसे सब की है। "शोक की हजारों जगहें हैं और हर्ष के सैकड़ों अवसर हैं। वे दिन-दिन मूर्ख मनुष्य पर ही प्रभाव डालते हैं, विवेकी पर नहीं।" प्रिय-अप्रिय भाव ही दुख-सुख बनकर मनुष्य को सताते हैं। संसार में केवल दुख है, सुख नहीं। तृष्णा से दुख होता है और दुख बीत जाना सुख का मिलना लगता है। अंततः न सदा दुख रहता है और न सुख रहता है। जो मनुष्य शाश्वत सुख चाहे वह दुनिया के दुख-सुख से ऊपर उठ जाय। दुखदायी समझकर अपने अंग को ही काटकर हटा दिया जाता है। विवेकवान सुख-दुख आने पर हार नहीं मानता। वह सब समय निर्भय रहता है। स्त्री, पुत्र या किसी माने गये अपने का थोड़ा भी अप्रिय कर दो, फिर तुम खुद समझ जाओगे कि कौन किस कारण से किस प्रकार किसके साथ कितना संबंध रखता है? "संसार में वे ही सुखी हैं जो बुद्धिहीन हैं अथवा जो बुद्धि से परे पहुंच गये हैं। बीच वाले तो दुख ही पाते हैं।" कोई चाहे जिस अप्रिय बात को लेकर दुखी हो, वह कभी सुखी नहीं हो सकता, क्योंकि अप्रिय बातों का अंत नहीं है। एक अप्रिय बात के बाद दूसरी अप्रिय बात आती ही रहती है। सुख-दुख, उत्पत्ति-विनाश, लाभ-हानि, जीवन-मरण आयेंगे ही। विवेकवान इनमें आंदोलित नहीं होता। वेदव्यास ने कहा—राजा युधिष्ठिर! तुम राजसिंहासन पर बैठकर प्रजा का पालन करो।

युधिष्ठिर ने कहा—अर्जुन! जो तुम धन को बहुत महत्त्व दे रहे हो, यह ठीक नहीं है। स्वाध्याय, तप तथा ब्रह्मचर्य ब्राह्मणत्व है। इनसे कल्याण होता है। यज्ञ-याग का फल क्षणिक स्वर्ग है। सच्चा स्वर्ग संतोष है। संतोष के समान कोई सुख नहीं है। जिसने क्रोध और हर्ष को जीत लिया है, वही संतोष रूप वैराग्य में स्थित होता है। जब मनुष्य न भय करता है न भय देता है, न कुछ चाहता है और न किसी से द्वेष करता है, तब वह ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है। जिसके मन, वाणी तथा कर्तव्य सभी प्राणियों के लिए निष्पाप हैं, वह ब्रह्म ही

. **शोकस्थानसहस्राणि हर्षस्थानशतानि च।**
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पंडितम् ,

. **ये च मूढतमा लोके ये च बुद्धेः परं गताः।**
त एव सुखमेधन्ते मध्यमः क्लिश्यते जनः ,

है। जिसने मान, मोह, आसक्ति एवं द्वेष त्याग दिया है और आत्मज्ञान में रत है, वह मुक्त ही है।

धन–प्राप्ति की इच्छा न करना ही अच्छा है, क्योंकि धन और उसके आश्रित धर्म में महान दोष होते हैं। धन के लोभ में पड़े हुए मनुष्यों के लिए त्याज्य कर्मों का छोड़ना बड़ा कठिन है। धन के पीछे पड़े हुए लोगों में साधुता का आना कठिन है। धन पाने के लोभ में अनेकों को कष्ट दिया जाता है; और ऐसा मिला हुआ धन प्रकारांतर से प्रतिकूल होता है। धन–लोभी मनुष्य परद्रोही होता है और वह धन के लिए बड़ा–से–बड़ा पाप कर सकता है। नौकरों को उचित वेतन देने में धनी को कष्ट होता है और वेतन पाते हुए भी नौकरों को संतोष नहीं रहता। निर्धन को कौन क्या कह सकता है? वह सब प्रकार भय से मुक्त होकर सुखी रहता है। देवताओं से धन लेकर भी कोई धन से सुखी नहीं हो सकता। यदि धन है तो उसे परोपकार में लगाना उसकी सार्थकता है। अपात्र को धन न दे, किंतु सुपात्र को दे।

युधिष्ठिर ने आगे कहा–मुनिश्रेष्ठ वेदव्यास! इस युद्ध में बालक अभिमन्यु, द्रौपदी के पांच पुत्र, धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, वृषसेन, चेदिराज धृष्टकेतु तथा अनेक देशों के नरेश मारे गये। मैं जाति–भाइयों का हत्यारा हूं। मैं अत्यंत क्रूर, राज्य का लोभी, अपने वंश का विनाश करने वाला निकला। इन बातों को सोच–सोचकर मैं शोक से छूट नहीं रहा हूं। मैं अत्यंत व्याकुल हो रहा हूं। जिनकी गोद में खेला, लोटा–पोटा और जिनका प्यार पाकर मैं मचल जाता था, उन्हीं पितामह भीष्म को मैंने राज्य के लोभ से मरवा डाला। मैंने देखा कि अर्जुन के तीखे बाणों से आहत होकर पितामह भीष्म थरथर कांप रहे हैं, शिखंडी उनकी ओर देख रहा है और पितामह का सारा शरीर बाणों से खचाखच भर गया है, मेरा मन पीड़ित हो गया। पितामह भीष्म को पीड़ा से कांपते हुए देखकर मैं मूर्च्छित हो गया। जिन्होंने अपने बाण शिखंडी पर नहीं चलाये; उसकी रक्षा की, उन्हीं पितामह भीष्म को मैंने मरवा डाला। जब मैंने उन्हें रक्त से लथपथ जमीन पर पड़ा देखा, तभी मुझे शोक का ज्वर चढ़ गया। जिन्होंने हमें बचपन से पाल–पोषकर बड़ा किया और हर तरह हमारी रक्षा की, उन्हीं पितामह को मुझ पापी, राज्यलोभी, गुरुघाती तथा मूर्ख ने अल्पकाल रहने वाले राज्य की प्राप्ति के लिए मरवा डाला।

युधिष्ठिर आगे और कहते हैं–गुरु द्रोणाचार्य समस्त राजाओं के पूज्य थे, परंतु मैंने उनके पास जाकर उनके पुत्र के संबंध में झूठ बोला। उस समय उन्होंने मुझसे पूछा–राजन! सच बताओ, क्या मेरा पुत्र अश्वत्थामा जीवित है? वे

मेरे द्वारा सत्य वचन की आशा रखकर ही मुझसे यह बात पूछे थे। जब-जब यह बात मुझे याद होती है, तब-तब मैं शोकाग्नि में जलने लगता हूं। परंतु मैं राज्य के लोभ में खूब डूबा था, अतएव मुझ पापी, गुरु हत्यारे ने अश्वत्थामा नाम के मरे हुए हाथी की आड़ लेकर उनसे झूठ बोल दिया कि अश्वत्थामा मारा गया। उनको मैंने धोखा दिया। मैंने सत्य का चोला उतार फेंका और अश्वत्थामा नाम के हाथी मारे जाने पर गुरुदेव से कह दिया 'अश्वत्थामा मारा गया।' इसलिए उनको अपने पुत्र अश्वत्थामा के मारे जाने का विश्वास हो गया। इस पाप के परिणाम में मैं किस लोक में जाऊंगा? अपने बड़े भाई कर्ण को भी मैंने मरवा दिया, वह भी अत्यंत अनीतिपूर्वक। मैंने राज्य के लोभ से सुभद्रा के लाड़ले होनहार पुत्र अभिमन्यु को युद्ध की आग में झोंक दिया। तभी से मैं उसके पिता अर्जुन तथा उसके मामा श्रीकृष्ण की ओर आंखें उठाकर देख नहीं पाता हूं। मैं पापी हूं, संपूर्ण पृथ्वी के राजाओं का विनाशक हूं। मैं गुरुघाती हूं। अब मैं अन्न-जल छोड़कर आमरण अनशन द्वारा शरीर को छोड़ दूंगा; जिससे दूसरे जन्म में मैं कुल विनाशक न बनूं। आप लोग जिधर जाना चाहें चले जायं, मुझे मरने दें।

वेदव्यास ने कहा-नहीं, ऐसा नहीं होने देंगे। मैं पहले की कही हुई बातें पुनः कहता हूं। तुम शोक न करो। सब प्रारब्धाधीन है। सारा संसार पानी का बुलबुला है। जो बनता है वह मिटता है। "सारे संग्रहों का अंत विनाश है, सारी उन्नतियों का अंत पतन है, संयोगों का अंत वियोग है और जीवन का अंत मरण है।"

वेदव्यास ने आगे कहा-राजा जनक के पूछने पर अश्म ऋषि ने बताया था-जन्म के साथ सुख और दुख लग जाते हैं। ये मनुष्य के ज्ञान को वैसे ही हर लेते हैं जैसे वायु बादल को। 'मैं कुलीन हूं, सिद्ध हूं, मैं साधारण मनुष्य नहीं हूं।' ये अहंकार की तीन धाराएं मनुष्य को निरंतर सींचती हैं। मनुष्य भोगों की आसक्ति से बाप-दादों की कमाई उड़ाता है, और पीछे कंगाल होकर दूसरों का धन हड़पना चाहता है। फिर वह राजाओं द्वारा दंडित होता है। जो मनुष्य बीस-तीस वर्ष की उम्र में चोरी-डाका आदि कर्म में लग जाते हैं, वे सौ वर्ष तक नहीं जी सकते। चित्त के भ्रम और अनिष्ट की प्राप्ति से मनुष्य मानसिक दुख से पीड़ित रहता है। विषयों की आसक्ति दुखों का मूल कारण है। बुढ़ापा और मृत्यु

. **सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।**
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम् ,
उक्त श्लोक वाल्मीकि रामायण (, ,) में भी है।

के मुख में बलवान–निर्बल, छोटे–बड़े सब समाये हैं। चाहे समुद्रपर्यंत राज्य का अधिपति हो, बुढ़ापा और मृत्यु से बच नहीं सकता। जीव के सामने जो दुख–सुख आते हैं, उसे उन्हें सहना ही है। प्रिय–अप्रिय, अर्थ–अनर्थ, सुख–दुख अपने ही कर्मों के फल हैं।

रोग, अग्नि, जल, अस्त्र, भूख–प्यास, विपत्ति, विष, ज्वर तथा ऊंची जगह से गिरना मरण के कारण हैं। इसका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। धनवान भी जवानी में मर जाता है और गरीब भी सौ वर्ष तक जीता है। धनवानों को प्रायः खाने और पचाने की शक्ति नहीं रहती और दरिद्र के पेट में काठ भी पच जाता है। समझदार मनुष्य शिकार, जुआ, स्त्री और शराब से दूर रहता है; किंतु कितने विद्वानों को भी देखा जाता है कि इन व्यसनों में फंसे रहते हैं।

इष्ट–अनिष्ट सब काल प्रेरित है। वायु, आकाश, अग्नि, सूर्य, चंद्रमा, दिन, रात, नक्षत्र, नदी, पर्वत आदि काल ही बनाता और धारण करता है। सरदी–गरमी, वर्षा आदि भी काल के अधीन हैं। औषध, मंत्र, जप, होम आदि भी बुढ़ापा और मौत से बचा नहीं सकते। जैसे सागर में तैरते दो काठ मिल जाते और छुट जाते हैं वैसे संसार में प्राणियों का मिलना–छुटना है। धनवानों और दरिद्रों पर काल का समान आक्रमण होता है। अनादि काल से हम असंख्य माता–पिता, भाई, पुत्र आदि से जुड़े हैं, परंतु उनमें आज किसका कौन है? विवेकवान को यह विचारना चाहिए कि मैं कौन हूं, कहां हूं, कहां जाऊंगा, किसलिए आया हूं और किसलिए किसका शोक करूं? संसार चक्र की तरह घूमता है। इसमें प्रियजनों का सहवास अनित्य है। यहां सबका संबंध राह में मिले बटोहियों के समान है। संसार–समुद्र में जरा–मृत्यु आदि बड़े–बड़े मगरमच्छ पड़े हैं। इसी काल–समुद्र में सब डूब रहे हैं। परंतु इसे समझने वाले बिरले हैं। बड़े–बड़े वैद्य परिवार सहित रोगों के शिकार होते देखे जाते हैं। वे कड़वे काढ़े और घृत पीते हैं, परंतु मृत्यु के ग्रास होते हैं। रसायन जानने वाले वैद्य अपने लिए रसायन का अच्छी तरह प्रयोग करके भी काल के मुख में चले जाते हैं।

देहधारियों के दिन, रात, महीने, वर्ष बीतकर नहीं लौटते। सब देहधारी मृत्यु के ग्रास हैं। जब प्राणी अपने माने गये शरीर के साथ सदा नहीं रह सकता, तब दूसरे के साथ सदा कोई कैसे रह सकता है? आज तुम्हारे पिता–पितामह कहां हैं? आज न तुम उन्हें देखते हो और न वे तुम्हें देखते हैं। इन स्थूल नेत्रों

से स्वर्ग-नरक नहीं दिखते। उन्हें विवेक से देखो। युधिष्ठिर! तुम्हें राग-द्वेष से रहित होकर राजधर्म का पालन करना चाहिए।

श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से राजा सृंजय की कथा सुनायी जो पुत्र-शोक में पीड़ित थे। उन्होंने सोलह प्रतापवान राजाओं का मरना बताकर उन्हें शोक से दूर रहने का उपदेश दिया। यह विषय द्रोण पर्व के चौथे प्रसंग में भी आ चुका है।

आगे वेदव्यास ने धर्मशास्त्रों के अनुसार प्रायश्चित का वर्णन किया है, जो बहुत लंबा है। उन्होंने बताया कि कोई भी गलती प्रायश्चित से मिट जाती है (अध्याय -)।

. युधिष्ठिर की शोभायात्रा, तर्कशील ब्राह्मण द्वारा आलोचना

युधिष्ठिर को कुछ संतोष हुआ। उन्होंने वेदव्यास से कहा कि धर्म का आचरण और राजधर्म का पालन परस्पर विरुद्ध दिखते हैं। इस बात को सोचकर मुझे हर क्षण चिंता रहती है और मन पर मोह छाया रहता है। वेदव्यास ने कहा-राजन! इन सब बातों का अच्छा समाधान तुम्हें भीष्म से मिलेगा। तुम उनके पास जाकर अपनी जिज्ञासा प्रस्तुत करो। भीष्म शास्त्रों के बहुज्ञ हैं। वे तुम्हें बतायेंगे।

युधिष्ठिर ने कहा-मैं अपने भाई-बंधुओं का विनाश करके संपूर्ण लोकों का अपराधी बन गया हूं। भीष्म सरलता से युद्ध कर रहे थे; परंतु मैंने उन्हें छल करके मरवाया है। अब फिर मैं उन्हीं से अपनी शंका की बातें पूछने जाऊं, क्या मैं इस योग्य हूं? मैं कौन-सा मुंह लेकर उनके पास जाऊं?

श्रीकृष्ण ने कहा-युधिष्ठिर! अब आप हठ पकड़कर शोक में न डूबे रहें। महर्षि वेदव्यास जो कहते हैं, वैसा करें। आपके भाई तथा बचे हुए राजा और प्रजा सब आपकी राह देखते हैं। आप राजसिंहासन पर बैठकर प्रजापालन करें और पितामह भीष्म से अपनी शंका का समाधान करायें।

श्रीकृष्ण की उक्त बातें सुनकर युधिष्ठिर हलके मन होकर उठ खड़े हुए और भाई-बंधु, राजे-महाराजे तथा प्रजा सहित शोभायात्रा करते हुए हस्तिनापुर में प्रवेश किये।

इसी बीच एक ब्राह्मण ने युधिष्ठिर से कहा-राजन! बहुत ब्राह्मणों के मतानुसार मैं कह रहा हूं। युधिष्ठिर! तुम अपने भाई-बंधुओं की हत्या करने

वाले एक दुष्ट राजा हो। तुम्हें धिक्कार है! ऐसे पुरुष के जीवन से क्या लाभ? तुम बंधुघाती तथा गुरु–हत्यारे का तो मर जाना ही अच्छा है, जीवित रहना अच्छा नहीं है।

उक्त बातें सुनकर वहां उपस्थित ब्राह्मण तथा राजा युधिष्ठिर लज्जित हो गये, देर तक कुछ बोल न सके। फिर धैर्य धरकर युधिष्ठिर ने कहा–ब्राह्मणो! मैं विनीत भाव से आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप लोग मुझ पर प्रसन्न हों। मैं सब तरफ से विपत्तिग्रस्त हूं; अतएव आप लोग मुझे धिक्कार न दें।

ब्राह्मणों ने कहा–राजन! यह हम लोगों की बात नहीं कह रहा है। हम तो आपको आशीर्वाद देते हैं कि आपकी राजलक्ष्मी सदैव बनी रहे। आपको कटु कहने वाला यह दुर्योधन का मित्र चार्वाक नाम का राक्षस है। इसके बाद ब्राह्मणों ने उस कटु कहने वाले ब्राह्मण को बहुत फटकारा और अपने हुंकार से उसे मार डाला।

श्रीकृष्ण ने कहा–सत्युग में चार्वाक राक्षस ने बदरिका आश्रम में बहुत बड़ी तपस्या की। ब्रह्मा जी ने उससे वर मांगने का आग्रह किया। तपस्वी चार्वाक राक्षस ने वर मांगा कि मैं सर्वत्र निर्भय रहूं। ब्रह्मा ने कहा–तुम सबसे निर्भय रहोगे, किंतु ब्राह्मण का अपमान न करना, अन्यथा उनसे तुम पिट जाओगे। वर पाकर वह चार्वाक राक्षस देवताओं को दुख देने लगा। देवताओं ने दुखी होकर ब्रह्मा जी से प्रार्थना की कि इस दुष्ट का वध होना चाहिए। ब्रह्मा जी ने कहा–मैंने ऐसा विधान कर दिया है जिससे उसका शीघ्र ही वध हो जायगा। मनुष्यों में राजा दुर्योधन इसका मित्र होगा और उसके स्नेहवश यह चार्वाक नाम का राक्षस ब्राह्मणों का अपमान कर बैठेगा और ब्राह्मण अपने क्रोध से उसे जला देंगे। श्रीकृष्ण ने कहा–राजन! आप शोक न करें। यह वही राक्षस है जो अपने पाप से ब्राह्मणों द्वारा मारा जाकर पृथ्वी पर पड़ा है। राजन! अपने क्षत्रिय धर्म के अनुसार भाई–बंधुओं का वध किया है और क्षत्रियशिरोमणि स्वर्ग में चले गये हैं। राजन! अब आप अपने कर्तव्य का पालन कीजिए। आप ग्लानि न करें। आप शत्रुओं को मारिए, प्रजा की रक्षा कीजिए और ब्राह्मणों का आदर–सत्कार करते रहिए (अध्याय –)।

मीमांसा

महाभारत काल के पहले ही से आन्वीक्षकी विद्या का अध्ययन–अध्यापन होता रहा है। कौटिलीय अर्थशास्त्रम् की शुरुआत में ही आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दंड–चार विद्याएं बतायी गयी हैं। सांख्य, योग और लोकायत

आन्वीक्षकी है, वैदिक कर्मकांड त्रयी है; कृषि, गोपालन तथा व्यापार वार्ता है और राजकाज दंड है। प्रथम विद्या आन्वीक्षकी में सांख्य और योग के साथ लोकायत है जो कारण-कार्य-व्यवस्था संबलित तर्क उपस्थित करता है। इस धारदार तर्क से पोगापंथी धार्मिकों का परदाफाश होता था, इसलिए वे इनसे चिढ़ते थे और इन्हें चार्वाक, राक्षस आदि कहकर तिरस्कृत करते थे। तथाकथित धार्मिक लोग कथा गढ़ने में चतुर होते हैं और वे अपने कल्पित मत की बात महापुरुषों के मुंह में डालकर निकाल लेते हैं। यहां भी उन्होंने श्रीकृष्ण और ब्रह्मा के मुंह में अपनी बात डालकर निकाल ली है।

इस संबंध में वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं–"ज्ञात होता है कि युधिष्ठिर के विषय में इस प्रकार का मत रखने वाले भी उस समय कुछ लोग थे। यह तो स्पष्ट लिखा है कि युधिष्ठिर की भी अपने विषय में कुछ ऐसी ही भावना थी। ऐसे स्पष्टवादी ब्राह्मण को महाभारत के लेखक ने राक्षस विशेषण देते हुए लिखा है कि दूसरे ब्राह्मणों ने उसे वहीं नोच डाला। इससे राजा प्रसन्न हुए। यहां कृष्ण को भी कुछ सफाई देनी पड़ी। उन्होंने कहा–इस चार्वाक ने सत्युग में बदरीनाथ में बहुत तपस्या करके ब्रह्मा जी से यह वर प्राप्त किया था कि वह देवता और मनुष्यों से अभय हो जाय। तब से वह सबको दुख दे रहा था। अच्छा हुआ जो यह आज ब्रह्मकोप से ठिकाने लग गया (*स एष निहतः शेते ब्रह्मदण्डेन राक्षसः* ,)। तुम क्षत्रियों के वध का शोक न करो। वे तो क्षात्र धर्म के अनुसार मारे गये हैं। तुम अपने मन की ग्लानि दूर करके प्रजापालन के कर्म में निरत होओ।

"थोड़ा-सा ही खुरचने से यह समझा जा सकता है कि चार्वाक की यह कहानी किसी भागवत लेखक ने भौंड़े रूप में यहां जोड़ दी है। स्वतंत्र विचार रखने वालों का लोकायत दर्शन इस देश में अत्यंत प्राचीन काल से था। कोई भी उनकी चुटकी या आलोचना से बच नहीं पाता था।"

श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर से यह कहना कि जो आपने भाई-बंधुओं की हत्या की है वह क्षत्रिय धर्मानुकूल है। वे मारे गये क्षत्रिय तो स्वर्ग में पहुंचकर उसका आनंद ले रहे हैं–भयंकर आत्मप्रवंचना है। आज के कठमुल्ले भी लोगों को मार-मारकर जन्नत भेज रहे हैं। वस्तुतः अहिंसा और प्रेम में स्वर्ग है, हत्या में तो नरक है। लेखक महोदय ने वर-शाप की लाल बुझक्कड़ी कहानी गढ़कर और उसे श्रीकृष्ण के मुंह में डालकर निकाल ली है। ऐसी षड्यंत्रकारी बातों में भोला समाज फंसता है।

. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**

. मृतकों का श्राद्ध–कर्म आदि

युधिष्ठिर का राज्याभिषेक हुआ, जिसमें श्रीकृष्ण, सात्यकि, चारों पांडव, द्रौपदी तथा धृतराष्ट्र, गांधारी, कुंती आदि उपस्थित थे। इसके बाद युधिष्ठिर और धृतराष्ट्र ने युद्ध में मारे गये सभी सगे–संबंधियों तथा अन्य राजाओं का श्राद्ध–कर्म किया। भागवत लेखकों का महाभारत में घोर हस्तक्षेप है ही। युधिष्ठिर के द्वारा श्रीकृष्ण की भावुकतापूर्ण स्तुति करायी गयी है।

इसके बाद महाराज युधिष्ठिर अपने चारों भाइयों–अर्जुन, भीम, नकुल तथा सहदेव के रहने के लिए अलग–अलग भवन दिये। फिर उन्होंने ब्राह्मणों तथा आश्रितों का सत्कार किया। पश्चात उन्होंने श्रीकृष्ण के सामने अपनी कृतज्ञता प्रकाशित की जो स्वाभाविक ही है।

इसके बाद भीष्म द्वारा श्रीकृष्ण की सैंतालीस ( )वें अध्याय में लंबी स्तुति करायी गयी है जो महा भावुकतापूर्ण है। इसके बाद सब रथ पर बैठकर कुरुक्षेत्र जाते हैं, जहां हड्डी, मांस, मज्जा, रक्त, चाम आदि से पृथ्वी ढकी है। मनुष्य और घोड़े–हाथियों के विशाल संहार से वहां का दृश्य भयानक है।

वहीं युधिष्ठिर श्रीकृष्ण से पूछ बैठते हैं कि परशुराम जी ने क्षत्रियों का इक्कीस बार क्यों संहार किया? इसके उत्तर में श्रीकृष्ण से लंबी बात करायी गयी जो प्रसिद्ध है। श्रीकृष्ण द्वारा भीष्म के गुण, प्रभाव का विस्तार से वर्णन कराया गया है। भीष्म के द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति करायी गयी है। लेखक ने श्रीकृष्ण के द्वारा भीष्म को आशीर्वाद दिलाया है। अंततः श्रीकृष्ण भीष्म से कहते हैं कि आपका छप्पन ( ) दिन जीवन शेष है (,)। इसके बाद आप शरीर त्याग देंगे। इसके साथ आपका ज्ञान भी लुप्त हो जायगा, इसलिए आप अपना सारा ज्ञान सत्पात्र युधिष्ठिर को दे दें। ये जानने के लिए उत्सुक हैं।

भीष्म ने कहा–श्रीकृष्ण! दुर्बलता के कारण मेरी जीभ तालु में सट जाती है। ऐसी स्थिति में मैं कैसे बोल सकता हूं? अतएव आप मुझे क्षमा कीजिए, मैं बोल नहीं सकता। तत्पश्चात श्रीकृष्ण द्वारा भीष्म को वर दिलाया गया है, इसलिए भीष्म शर–शय्या पर पड़े स्वस्थ, स्मृतिमान तथा शक्ति–युक्त हो गये।

अंततः पांडव, श्रीकृष्ण तथा सभी लोग भीष्म से विदा होकर अपने–अपने निवास को चल दिये और अगले दिन आने के लिए बता दिये (अध्याय –)।

मीमांसा

भीष्म द्वारा जो श्रीकृष्ण की स्तुति करायी है, इस अध्याय का नाम भीष्मस्तवराज है। यह शांति पर्व का सैंतालीस ( )वां अध्याय है। इसमें श्रीकृष्ण को विश्व का सर्व-हर्ता-कर्ता चित्रित किया गया है। वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है-"भीष्मस्तवराज की रचना चौथी शती में, और महिम्नस्तव की रचना पांचवीं शती में हुई, ऐसा अनुमान समीचीन ज्ञात होता है।" हर संप्रदाय के भावुक भक्तों द्वारा सत्य पर परदा डालकर असत्य का प्रचार किया गया है।

लेखक को भीष्म के मुख से वर्ण, आश्रम, राज्य, आत्मज्ञान आदि की बहुत बातें कहलानी हैं, तो उन्हें श्रीकृष्ण का वर तो चाहिए ही। किसी के कह देने मात्र से किसी असमर्थ का बलवान हो जाना कागज की लेखी की बात है। धर्म के नाम पर तो चमत्कार का घटाटोप है ही।

. राजधर्म के उपदेश

युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा-आज हमारे साथ सैनिकों को नहीं जाना चाहिए। केवल हम लोगों को चलना है। भीड़-भाड़ करके पितामह भीष्म को कष्ट नहीं देना है। मैं विभिन्न रुचियों वाले मनुष्यों की भीड़ वहां नहीं जुटाना चाहता हूं। अतएव युधिष्ठिर के साथ श्रीकृष्ण, अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, सात्यकि, कृपाचार्य, युयुत्सु, संजय आदि भीष्म के पास गये। श्रीकृष्ण ने भीष्म से कहा कि युधिष्ठिर लज्जित हैं। वे आपके सामने आने से डरते हैं। भीष्म ने कहा-डरने की कोई बात नहीं। वे सामने आयें और जो पूछना हो वह पूछें, मैं सहर्ष उत्तर दूंगा।

युधिष्ठिर ने कहा-राजाओं का धर्म श्रेष्ठ कहा गया है। मैं इसे बहुत बोझ रूप मानता हूं। आप मुझे राजधर्म का उपदेश कीजिए।

भीष्म ने कहा-राजा का प्रथम धर्म है प्रजा को संतोष देना। दैव के भरोसे न बैठा रहे। राजा को पुरुषार्थ पर जोर देना चाहिए। यद्यपि उन्नति में दैव (प्रारब्ध) तथा पुरुषार्थ (परिश्रम) दोनों कारण हैं, तथापि पुरुषार्थ पर ही बल देना चाहिए। प्रारब्ध तो पहले से ही निश्चित है। शुरू किया हुआ कार्य सफल न हो, तो धैर्य न छोड़े। सदैव प्रयत्न में लगा रहे। सत्य राजाओं की उन्नति का

. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**

साधन है। ऋषियों ने भी सत्य का अनुसरण किया है। सत्य बरताव से ही प्रजा राजा पर विश्वास करती है। वही राजा स्थिर राज कर सकता है जो गुणवान, शीलवान, संयमी, कोमल स्वभाव, धर्मपरायण, जितेंद्रिय, प्रसन्नमुख तथा उदार है। कार्यों में सरलता तथा कोमलता का व्यवहार रखे, किंतु अपने छिद्र, अपनी मंत्रणा तथा अपने कार्य–कौशल गुप्त रखे। इनमें सरलता नहीं रखना चाहिए।

यदि राजा बहुत सरलता का बरताव करता है तो लोग उसकी आज्ञा का उल्लंघन करने लगते हैं, और केवल कठोर बरताव करने से लोग उद्विग्न होने लगते हैं, समयानुकूल कोमल तथा कठोर बरताव करना चाहिए। लोहा पत्थर से पैदा होता है। यदि लोहा पत्थर से टकराता है तो वह कुंठित होता है। इसी प्रकार क्षत्रिय ब्राह्मण से पैदा हुआ है। यदि वह ब्राह्मण से टकराता है तो भ्रष्ट होता है। परंतु यदि ब्राह्मण लोक–विनाश में लग जाय, तो राजा को चाहिए कि वह उसको दंडित करे। यदि ब्राह्मण वेदांत में पारगत उत्तम विद्वान है, परंतु वह शस्त्र उठाकर मार–काट में लग जाय, तो उसे पकड़कर जेलखाने में डाल देना चाहिए, विनाशक ब्राह्मण को मार डालना राजा का धर्म है।

राजा प्रज्ञावान मनीषियों का संग्रह करे। वे ही राजा के सुदृढ़ दुर्ग हैं। मरुस्थल, जल, पृथ्वी, वन, पर्वत और मनुष्य, ये राजा के रक्षक छह दुर्ग हैं; परंतु मनुष्य ही सबसे सुदृढ़ दुर्ग हैं। राजा प्रजा मात्र को प्रसन्न रखे। इसके लिए राजा धर्मात्मा और सदाचारी रहे। बृहस्पति ने कहा है कि राजा को सब जगह क्षमाशील नहीं बने रहना चाहिए। अन्यथा नीच मनुष्य राजा पर वैसे हावी हो जायंगे, जैसे महावत हाथी पर। जैसे वसंत ऋतु का सूर्य न अधिक ठंडक पहुंचाता है न कड़ी धूप, वैसे राजा न अत्यंत कोमल रहे और न अत्यंत कठोर। वह प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम प्रमाणों द्वारा अपने–पराये की पहचान करता रहे।

राजा व्यसनों से दूर रहे, वे अठारह हैं। इनमें दस काम से उत्पन्न हैं और आठ क्रोध से। शिकार, जुआ, दिन में सोना, परनिंदा, स्त्री–सेवन, मद, वाद्य, गीत, नृत्य और मदिरापान काम से उत्पन्न व्यसन हैं और चुगुली, दुस्साहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया, अर्थ दूषण, कटुवचन तथा कठोर दंड क्रोध से उत्पन्न दोष हैं। इन व्यसनों में फंसा हुआ राजा सबके अनादर का पात्र होता है। जैसे समझदार गर्भिणी स्त्री अपने स्वाद के चक्कर में न पड़कर, जिससे गर्भस्थ बच्चे का हित हो वैसा भोजन करती है, वैसे विवेकवान राजा अपने मन को प्रिय लगने वाले विषयों का परित्याग कर प्रजा के हित में काम करता है। राजा सदैव धैर्यवान रहे। वह अपराधियों को दंड देने में संकोच न करे।

राजा अपने सेवकों से हंसी-मजाक न करे। सेवक अधिक मुंहलगे हो जाने पर मालिक का अपमान करने लगते हैं। वे अपनी मर्यादा को छोड़कर स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन करने लगते हैं। वे स्वामी की बातों पर संदेह करते, उनकी गुप्त बातों को सबसे प्रकट करते हैं। वे स्वामी से जो नहीं मांगना चाहिए वह वस्तु मांग बैठते हैं। इतना ही नहीं, स्वामी के लिए रखे हुए खाने-पीने के पदार्थों को स्वयं खा-पी लेते हैं। वे स्वामी की निंदा करते हैं, उन पर क्रोध करते हैं और घूस लेकर तथा धोखा देकर राज्य के कार्य में विघ्न डालते हैं। वे जाली आज्ञापत्र जारी करके राजा के राज्य को दुर्बल कर देते हैं। वे रनिवास के रक्षकों से मिल जाते हैं, अथवा उनके समान वेष बनाकर वहां घूमते हैं। राजा के सामने मुंह फैलाकर जम्हाई लेते और थूकते हैं। वे मुंहलगे सेवक लज्जा छोड़कर मनमानी बातें करते हैं, परिहासशील, कोमल स्वभाव वाले राजा की नौकर अवहेलना करने लगते हैं। और वे उनके वाहनों को अपनी सवारी के काम में लेने लगते हैं। आम दरबार में बैठकर मित्रों के समान बराबर का बरताव करते तथा बातें करते हुए कहते हैं-'राजन! आप यह काम नहीं कर पायेंगे, आपने यह काम अनुचित किया' इत्यादि। उक्त बातें सुनकर यदि राजा गुस्सा करे, तो वे नौकर हंस देते हैं। राजा से सम्मानित होने पर वे ढीठ सेवक प्रसन्न नहीं होते। यहां तक कि वे अपने स्वार्थ के लिए राजसभा में ही राजा से विवाद करने लगते हैं। वे गुप्त राजकीय बातों तथा राजा के दोषों को दूसरों के सामने प्रकट कर देते हैं। वे राजा के आदेशों की अवहेलना करके और उनसे खिलवाड़ करते हुए उनकी सेवा करते हैं। वे राजा के सामने ही उनके पहनने, खाने, पीने, नहाने, चंदन लगाने आदि का मजाक उड़ाया करते हैं। जो उनको काम बताया जाता है उसको बुरा कहकर छोड़ देते हैं। वे अपने पाते हुए वेतन से संतुष्ट न होकर राजकीय धन को हड़पते हैं। जैसे लोग डोरे में बंधी हुई चिड़िया से खेल करते हैं, वैसे ढीठ नौकर राजा के साथ खेलना चाहते हैं, और साधारण लोगों से कहते हैं 'राजा तो मेरा गुलाम है।' हंसी-विनोद करने वाले सरल स्वभाव के राजा के जीवन में ऊपर बताए हुए तथा अन्य दोष भी आते हैं।

राजा को सदैव उद्योगशील होना चाहिए। उस राजा की प्रशंसा नहीं होती जो उद्योग छोड़कर स्त्री के समान बेकार बैठा रहता है। शुक्राचार्य ने कहा है-जैसे बिल में रहने वाले चूहे को सांप निगल जाता है, वैसे सावधान न रहने वाले राजा तथा भ्रमण न करने वाले ब्राह्मण को पृथ्वी निगल जाती है अर्थात वे निरर्थक रहकर मर जाते हैं। राजा संधि करने योग्य से संधि करे और विरोध करने योग्य से डटकर विरोध करे। राजा, मंत्री, मित्र, खजाना, देश, दुर्ग और

सेना संबलित राज्य का जो विरोध करता है, वह चाहे मित्र या गुरु हो, दंडनीय है। जो घमंडी है, कर्तव्य–अकर्तव्य न समझकर कुमार्ग पर चलता है, वह गुरु होने पर भी दंडनीय है। राजा सगर ने अपने पुत्र असमंजस को इसलिए अपने घर से निकालकर बाहर कर दिया कि वह अयोध्या के बच्चों को सरयू नदी में फेंक देता था। उद्दालक ने अपने ज्ञानी पुत्र श्वेतकेतु को इसलिए त्याग दिया था कि वह ब्राह्मणों के साथ मिथ्या और कपटपूर्ण व्यवहार करता था। अतएव राजा सत्यपरायणता तथा व्यवहार की सरलता से प्रजा की पूर्ण रक्षा करे। दूसरों के धन का नाश न करे। जो कुछ दूसरों को देना हो, समय पर दे। राजा पराक्रमी, सत्यवादी और क्षमाशील रहे। ऐसा राजा कभी पथ–भ्रष्ट नहीं होता है।

मन पर विजयी, क्रोधजित, शास्त्रज्ञ, वेदज्ञ, अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की तरफ गतिशील रहने वाला और अपने विचारों को गुप्त रखने वाला राजा अजेय होता है। राजा का बड़ा पाप है प्रजा की रक्षा न करना। राजा किसी पर भी विश्वास न करे। विश्वसनीय व्यक्ति पर भी अधिक विश्वास न करे। राजा न्याय करने में यमराज तथा कोष–संग्रह करने में कुबेर की तरह होना चाहिए। प्रजा में जिनके भरण–पोषण का प्रबंध न हो, उनका भरण–पोषण राजा स्वयं करे। राजा को प्रसन्नचित्त से मुस्कराते हुए बात करना चाहिए। राजा वृद्ध का आदर करे, लोलुपता त्यागकर निरालस रहे। सदा संतुष्ट रहे। राजा ऐसी वेश–भूषा रखे जिससे वह देखने में मनोहर लगे। साधुओं का धन कभी न छीने। असाधुओं से दंड के रूप में धन ले। साधु पुरुषों को राजा स्वयं धन दे। दुष्ट दमन करे, दान करता रहे, मन को वश में रखे।

जो वीर, भक्त, पूर्ण समर्पित, कुलीन, नीरोग, शिष्ट, शिष्टों की संगत करने वाला, आत्मसम्मान का रक्षक, दूसरों का अपमान न करने वाला, धर्मपरायण, विद्वान, लोक व्यवहार का ज्ञाता, शत्रुओं से सावधान, साधु स्वभाव, पर्वत के समान अटल और कृतज्ञ हो, राजा उन्हें अपना सहायक बनावे। उन्हें अपने समान ही भोग–ऐश्वर्य समर्पित करे। राजा का अधिक ऐश्वर्य इतना ही है कि वह राजसिंहासन पर बैठे और आज्ञा दे। उक्त योग्य सहायकों से राजा प्रत्यक्ष और परोक्ष एक समान बरताव करे। ऐसा राजा कष्ट नहीं उठाता है। जो राजा सब पर संदेह करता तथा सबका सर्वस्व छीनता है, वह शीघ्र नष्ट हो जाता है। जो राजा पवित्र व्यवहार करके प्रजापालक होता है, उसके पतन के दिन आने पर भी वह शीघ्र उठ खड़ा होता है। जो क्रोध को जीत लेता है, दुर्व्यसनों से दूर रहता है, कठोर दंड नहीं देता है, जो अपनी इंद्रियों पर विजयी है, वह राजा प्रजा का विश्वासपात्र होता है।

जो बुद्धिमान, त्यागी, विपक्ष की दुर्बलता का ज्ञाता, देखने में सुंदर, प्रजा के न्याय-अन्याय को समझने वाला, शीघ्र काम करने में समर्थ, क्रोध पर विजयी, आश्रितों पर दयालु, मननशील, कोमल स्वभाव, उद्योगी, कर्मठ, आत्म-प्रशंसा से दूर, आरंभ किये हुए कार्य को समय से संपन्न करने वाला है, वह राजा सर्वश्रेष्ठ है। वह उच्चतम गुण वाला राजा है जिसके राज्य में मनुष्य वैसे ही निर्भय तथा प्रसन्न होकर विचरते हैं जैसे पुत्र अपने पिता के घर में निर्भय होकर प्रसन्नतापूर्वक विचरता है। वह राजा श्रेष्ठ है जिसके राज्य में प्रजा को अपना धन छिपाकर न रखना पड़े। कपट, कुटिलता, माया, ईर्ष्या का त्यागकर ही सनातन धर्म का पालन संभव है।

वही राजा राज्य चलाने के योग्य है जो ज्ञान तथा ज्ञानियों का सत्कार करता है, परहित में लगा रहता है, सत्पुरुषों के पथ का अनुगमन करता है तथा सर्वत्यागी है। जिसके गुप्तचर, गुप्तमंत्रणा तथा निश्चित कार्य को विपक्षी न जान सकें, वह कुशल राजा है। लोक-रक्षक राजा के न होने पर न स्त्री सुरक्षित रह सकती है और न धन। राजा का एकमात्र सनातन धर्म है प्रजापालन और प्रजारक्षा। जैसे टूटी नाव त्याग दी जाती है, वैसे शिक्षा न देने वाले आचार्य, वेदमंत्र न उच्चारण करने वाले पुरोहित, रक्षा न करने वाले राजा, कटु बोलने वाली पत्नी, गांव में रहने वाले ग्वाले और जंगल में रहने वाले नाई का त्यागकर दिया जाता है। युधिष्ठिर! मैंने जो कुछ कहा है वह राजधर्म का मक्खन है। राजधर्म के प्रणेता हैं-बृहस्पति, विशालाक्ष, शुक्राचार्य, इंद्र, महेंद्र, प्राचेतस मनु, भरद्वाज और गौरशिरा।

गुप्तचर रखना, दूसरे देशों में राजदूत रखना, उनके प्रति ईर्ष्या न कर समय पर वेतन देना, युक्ति से प्रजा से कर लेना, प्रजा के धन को अन्याय से न हड़पना, सत्पुरुषों का संग्रह करना, वीरता, कार्यदक्षता, सत्यभाषण, प्रजा का हितचिंतन, सरल अथवा कुटिल उपायों से शत्रुपक्ष में फूट डालना, पुराने मकानों तथा मंदिरों का जीर्णोद्धार करना, दीन-दुखियों की सहायता करना, दुष्टों को दंड देना, साधु पुरुषों को संरक्षण देना, कुलीन मनुष्यों को पास रखना, योग्य वस्तुओं का संग्रह करना, बुद्धिमान मनुष्यों की संगत करना, पुरस्कार आदि देकर सैनिकों को प्रसन्न रखना, निरंतर प्रजा की देखभाल रखना, काम करने में कष्ट न मानना, कोष बढ़ाना, नगर-रक्षा का पूर्ण प्रबंध करना, इन कामों को दूसरों के विश्वास पर न छोड़ना, यदि पुरवासियों में राजा के विरोध में कोई गुटबंदी हो तो उनमें फूट डलवा देना; शत्रु, मित्र और मध्यस्थ पर यथायोग्य ध्यान रखना, अपने सेवकों में गुटबंदी न होने देना, अपने नगर की

स्वयं देखभाल करना, किसी पर भी पूरा विश्वास न करना, दूसरों को आश्वासन देना, नीति का अनुसरण करना, सदैव उद्योगशील रहना, शत्रुओं से सावधान रहना, नीचकर्म और दुष्ट पुरुषों का सदा के लिए त्याग देना, ये सब राजा और राज्य–रक्षा के साधन हैं।

वचन–वीर नहीं, उद्योग–वीर होना चाहिए। बुद्धिमान होने पर भी उद्योगहीन राजा नष्ट हो जाता है। दुर्बल शत्रु को भी कम न माने। उसके प्रति लापरवाह न रहे। थोड़ी भी आग नगर को भस्म कर सकती है। राजा अपनी बातों को छिपाकर रखे। राजा लोगों में अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए धार्मिक कार्यों का अनुष्ठान किया करे। जिसने अपने मन को वश में नहीं किया है वह राजतंत्र को नहीं संभाल सकता। जो बहुत कोमल स्वभाव के होते हैं वे राजा भी राज्य को नहीं संभाल सकते। राज्य सबके उपभोग की वस्तु है, इसलिए उसका सार–संभाल सरल रूप से ही किया जा सकता है। अतएव राजा कठोर तथा कोमल, दोनों ढंग से रहे। राजा का प्रधान धर्म है प्रजा–पालन और उसकी रक्षा। प्रजा की रक्षा में राजा के प्राण चले जायं तो यह उसकी बहुत बड़ी उपलब्धि है। युधिष्ठिर! मैंने राजधर्म का थोड़ा वर्णन किया है। अब जो पूछना हो पूछो।

भीष्म की उक्त बातें सुनकर युधिष्ठिर, वेदव्यास, देवस्थान, अश्म, श्रीकृष्ण, कृपाचार्य, सात्यकि और संजय बहुत प्रसन्न हुए और सबने भीष्म की प्रशंसा की। युधिष्ठिर आंसू बहाते हुए भीष्म के चरण–स्पर्श किये और उनसे उन्होंने कहा कि अब संध्या हो रही है, कल आपसे अपना संदेह पूछूंगा। इसके बाद वे सभी भीष्म का प्रणाम कर दृष्टद्वती नदी पर आकर स्नान तथा संध्योपासना किये और पश्चात हस्तिनापुर चले गये (अध्याय –)।

. राजा और राज्य की उत्पत्ति तथा राजतंत्र का विधान

दूसरे दिन हस्तिनापुर से चलकर युधिष्ठिर अपने साथियों सहित भीष्म जी के पास पहुंचे और उनका नमस्कार कर तथा क्या रात सुख से बीती, पूछकर उनसे प्रश्न किये–पितामह भीष्म! लोक में राजा शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई? जिसे हम राजा कहते हैं, वह भी अन्य मनुष्यों की भांति ही होता है, फिर वह बड़े–बड़े लोगों तथा प्रजा को कैसे अपने वश में कर लेता है? वह कैसे विशाल राज्य का पालन करता है? राजा की प्रसन्नता से प्रजा प्रसन्न होती है और राजा के व्याकुल होने से प्रजा व्याकुल होती है। इसका क्या हेतु है? यह सारा जगत जिस एक ही व्यक्ति के सामने नतमस्तक हो जाता है उस राजा का क्या महत्त्व है? इसका कारण छोटा नहीं हो सकता।

भीष्म ने कहा–पहले न राज्य था, न राजा, न दंड था, न दंड देने वाला। प्रजा धर्म से ही एक दूसरे का पालन करती थी। आगे चलकर ऐसा निभना कठिन हो गया; अतएव जनता किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयी। अतएव उसके धर्म का नाश हो गया। सब प्राणी मोह-लोभ के अधीन हो गये। अप्राप्त वस्तुओं को पाने के लोभ में वे कामना के वश हो गये। कामना के अधीन होने से उनमें राग आ गया। वे राग के वश होकर कर्तव्य-अकर्तव्य को भूल गये। अतएव वे भोग-अभोग, वाच्य-अवाच्य, भक्ष्य-अभक्ष्य, दोष-अदोष के विचार से रहित होकर सब कुछ करने लगे। इस प्रकार धर्म का नाश हो गया, फिर तो वेदों का स्वाध्याय करना छूट गया। वैदिक ज्ञान लुप्त होने से यज्ञकार्य बंद हो गया।

ऐसी भयंकर स्थिति देखकर देवता लोग ब्रह्मा जी के पास गये और उन्होंने उनसे कहा–लोभ-मोह से दूषित होकर सनातन धर्म लुप्त हो गया है। यज्ञधर्म का लोप हो जाने से हम देवता तथा मनुष्य एक समान हो गये हैं। पहले मनुष्य यज्ञ करके आग में घी डालकर आहुति द्वारा ऊपर की ओर वर्षा करते थे और हम उनके लिए ऊपर से नीचे की ओर जल की वर्षा करते थे; परंतु अब उनके यज्ञकर्म का लोप हो जाने से हमारा जीवन संशय में पड़ गया है।

ब्रह्मा जी ने देवताओं को सांत्वना दी और कहा कि मैं उपाय करूंगा। इसके बाद ब्रह्मा जी ने अपनी बुद्धि से एक लाख अध्यायों का ऐसा नीतिशास्त्र रचा जिसमें धर्म, अर्थ और काम का विस्तारपूर्वक वर्णन है। जिसमें इनका वर्णन है वह प्रकरण 'त्रिवर्ग' कहलाता है। चौथा वर्ग मोक्ष है, वह उक्त त्रिवर्ग धर्म, अर्थ तथा काम से अलग है। मोक्ष का त्रिवर्ग दूसरा है, उसमें सत, रज और तम की गणना है। इससे भिन्न दंडनीति का त्रिवर्ग है जिसके भेद स्थान, वृद्धि और क्षय हैं। अर्थात दंड से धनियों की स्थिति, धर्मात्माओं की वृद्धि और दुष्टों का क्षय होता है। ब्रह्माजी के नीतिशास्त्र में आत्मा, देश, काल, उपाय, कार्य और सहायक, इन छह वर्गों का वर्णन है। ये छहों जब नीतिपूर्वक संचालित होते हैं, तब प्रजा की उन्नति होती है। उस ग्रंथ में आन्वीक्षिकी (सांख्य, योग तथा लोकायत), त्रयी (कर्मकांड), वार्ता (कृषि, गोपालन तथा व्यापार) और दंडनीति (राज्य संचालन) का निरूपण है।

मंत्रियों की रक्षा (उन्हें कोई फोड़ न ले इसके लिए सावधानी), प्रणिधि (राजदूत), राजपुत्र के लक्षण, गुप्तचरों के विचरण के उपाय, विभिन्न कार्यों के लिए विभिन्न जगहों में गुप्तचरों की नियुक्ति, साम, दाम, भेद, दंड और उपेक्षा, मंत्रणा, भेद नीति, मंत्रणा में होने वाले भ्रम या उसके फूटने के भय तथा मंत्रणा की सिद्धि और असिद्धि के फल, संधि के तीन भेद–उत्तम, मध्यम और अधम,

इनकी क्रमशः वित्तसंधि, सत्कारसंधि और भयसंधि। धन लेकर जो संधि की जाती है वह वित्तसंधि, सत्कार पाकर की जाने वाली सत्कारसंधि तथा भय के कारण की जाने वाली भयसंधि है जो उत्तरोत्तर निम्न हैं। शत्रुओं पर चढ़ाई करने के चार अवसर–अपने मित्रों की वृद्धि, अपने कोष की समृद्धि, शत्रुओं के मित्रों का नाश तथा शत्रुओं के कोष का नाश। त्रिवर्ग का विस्तार–धर्म विजय, अर्थ विजय तथा आसुर विजय। मंत्री, राष्ट्र, दुर्ग, सेना और कोष, इन पांच वर्गों के उत्तम, मध्यम तथा अधम भेद। प्रकट और गुप्त सेना। हाथी, घोड़े, रथ, पैदल, बेगार में पकड़े गये बोझ ढोने वाले लोग, नौकारोही, गुप्तचर तथा कर्तव्य का उपदेश देने वाले आचार्य। उस ग्रंथ में इन बातों का निरूपण है।

जंगम और अजंगम विष चूर्णयोग आदि। अर्थात सर्प तथा वानस्पतिक विष शत्रुपक्ष के लोगों के वस्त्रादि में स्पर्श कराने अथवा उनके भोजन में मिला देने के उपयोग में आता है। यह गोपनीय दंड साधन है। मार्ग–भूमि आदि के गुण, आत्मरक्षा के उपाय, आश्वासन और रथ आदि के निर्माण तथा निरीक्षण, सेना को दृढ़ करने के लिए हाथी, घोड़े, रथ और मनुष्य सेना की अनेक विधि से व्यूह रचना, नाना युद्धकौशल, जैसे ऊपर उछलकर, नीचे झुककर अपने को बचा लेना, सावधान होकर युद्ध करना, कुशलतापूर्वक निकल भागना, शस्त्रों के संरक्षण और प्रयोग। संकट से सेना का उद्धार करना, सैनिकों का उत्साह बढ़ाना, पीड़ा और आपत्ति के समय पैदल सैनिकों की स्वामिभक्ति की परीक्षा करना। दुर्ग के चारों ओर खाई खुदवाना। सेना का युद्ध के लिए तैयार होना, रथयात्रा करना, भयंकर जंगली लुटेरों द्वारा शत्रु के देश को पीड़ा देना, आग लगाने वाले, जहर देने वाले, बनावटी वेष बनाकर शत्रु को पीड़ा देना, शत्रु–दल के प्रधानों में फूट डालना, उनके फसल और पौधों को काट लेना, हाथियों को भड़काना, गलत संदेश फैलाकर शत्रुदल में आतंक फैलाना, शत्रुदल के लीडरों को विनयपूर्वक फोड़ लेना, शत्रुपक्ष के लोगों में अपने प्रति विश्वास पैदा करना, शत्रुराष्ट्र को पीड़ा देने की कला आदि का उस ग्रंथ में वर्णन है।

राज्य के ह्रास, वृद्धि और समान भाव रहने की स्थिति, दूतों के बल पर अपने राष्ट्र का लाभ; शत्रु, मित्र तथा मध्यस्थों का सम्यक विवेचन, बलवान शत्रुओं से टक्कर लेने तथा उन्हें कुचल डालने की विधि, शासन संबंधी सूक्ष्म व्यवहार, राज्य की हानि करने वाले तत्त्वों का उन्मूलन, परिश्रम, व्यायाम–योग तथा धन के त्याग और संग्रह का प्रतिपादन। जिनके भरण–पोषण का उपाय न हो उनका भरण–पोषण करना तथा उनकी देखभाल, धन का दान, दुर्व्यसन से दूर रहना। राजा और सेना के गुण, अर्थ, धर्म और काम के साधन तथा उनके

गुण-दोष, अनेक प्रकार की दुश्चेष्टा, सेवकों की जीविका के विचार, सबके प्रति सशंक रहना, प्रमाद-रहित रहना, अप्राप्ति की प्राप्ति करना और प्राप्ति की रक्षा रखना, उसको बढ़ाना और जो योग्य हों उनमें उनका वितरण, धर्म के लिए धन का त्याग करना, काम-भोग के लिए व्यय करना, संकट निवारण के लिए खर्च करना, काम तथा क्रोध से उत्पन्न व्यसनों का उस ग्रंथ में वर्णन है। कामजनित व्यसन चार हैं-शिकार, जुआ, शराब तथा स्त्री-प्रसंग। वाणी की कटुता, उग्रता, दंड की कठोरता, किसी को कैद कर लेना, किसी को त्याग देना, आर्थिक हानि पहुंचाना, ये छह क्रोधजनित व्यसन हैं। नाना प्रकार के मंत्र तथा उनकी क्रियाओं का भी उस ग्रंथ में वर्णन है।

शत्रु के राष्ट्र को कुचल देना, उनकी सेना का विनाश करना, उनके निवास-स्थानों को नष्ट करना, उनके चैत्य (देवस्थान) तथा वृक्षों को नष्ट करना, उनके निवास तथा नगर की घेराबंदी करना, कृषि, शिल्प, रथ निर्माण, ग्राम नगर आदि में रहने की विधि, जीवन-निर्वाह के अनेक उपाय, ढोल, नगारे, शंखभेरी आदि रणवाद्यों को बजाने की कला; मणि, पशु, पृथ्वी, वस्त्र, दास-दासी, सुवर्ण आदि का संग्रह, शत्रुपक्ष की इन वस्तुओं का विनाश करना। अपने देश में शांति स्थापित करना, सत्पुरुषों का सत्कार करना, विद्वानों से मेलजोल करना, दान और हवन की विधि जानना, मांगलिक वस्तुओं का स्पर्श करना, शरीर को वस्त्र तथा आभूषणों से सजाना, भोजन की व्यवस्था, आस्तिक्य मत रखना आदि का उस ग्रंथ में वर्णन है।

अकेला रहकर भी कैसे अपना उत्थान करे; विचार, सत्यता, उत्सवों में मधुर वचन का प्रयोग, गृहस्थ कर्म, न्यायालयों के प्रत्यक्ष तथा परोक्ष विचार, राजकीय पुरुषों के व्यवहार, ब्राह्मणों को दंड न देना, अपराधियों को युक्तिपूर्वक दंड देना, साथियों की उन्नति के लिए कार्य करना, पुरवासियों की रक्षा, राज्य की वृद्धि, वैद्यक शास्त्र के अनुसार बहत्तर प्रकार की चिकित्सा; देश, जाति तथा कुल के धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के उपाय तथा धन-लिप्सा, कोष वृद्धि के लिए कृषि, वाणिज्य आदि कर्म हैं, छल-कपट के प्रकार, स्रोत जल, स्थिर जल, सन्मार्ग से न विचलित होने के उपाय, नीतिशास्त्र आदि का उस ग्रंथ में वर्णन है।

इस विद्या को पहले शंकर ने ग्रहण किया। प्रजावर्ग की आयु का ह्रास देखकर ब्रह्मा-रचित इस एक लाख अध्यायों के ग्रंथ को महादेव ने संक्षिप्त किया। इसका नाम 'वैशालाक्ष' हुआ। इस ग्रंथ का पुरंदर ने अध्ययन किया, तब इसमें दस हजार अध्याय थे। फिर उन्होंने इसको संक्षिप्त कर पांच हजार

अध्यायों का बनाया। इसका नाम 'बाहुदंतक' हुआ। इसके बाद बृहस्पति ने इस ग्रंथ का संक्षेप कर तीन हजार अध्यायों का बनाया। इस ग्रंथ का नाम 'बार्हस्पत्य' हुआ। अंततः शुक्राचार्य ने इस ग्रंथ का संक्षेप कर एक हजार अध्यायों का बनाया। इस प्रकार मनुष्य की आयु उत्तरोत्तर छोटी होते देखकर महर्षियों ने इस शास्त्र को संक्षिप्त किया।

सब देवताओं ने विष्णु के पास जाकर सर्वोच्च पद प्राप्त करने वाले का नाम क्या हो, यह पूछा। भगवान नारायण ने 'विरजा' नाम का एक पुत्र पैदा किया, लेकिन उसने राजा होने की इच्छा न करके संन्यास ले लिया। विरजा का पुत्र हुआ 'कीर्तिमान' उसने भी विषयों से ऊपर उठकर मोक्षमार्ग का अनुगमन किया। कीर्तिमान के पुत्र हुए 'कर्दम'। वे भी तपस्वी निकले। कर्दम के पुत्र 'अनंग' हुए। वे राजनीति में निपुण हुए। अनंग का पुत्र हुआ 'अतिबल'। वह राज्य पाकर भ्रष्ट हो गया। मृत्यु की एक मानसिक कन्या थी। उसका नाम था 'सुनीथा'। उसने 'वेन' नाम का पुत्र पैदा किया। वेन अत्याचारी हुआ, तो उसे ब्राह्मणों ने मार डाला, और उसकी दाहिनी जंघा को मथकर एक पुत्र पैदा किया, जो नाटा कद का था। ऋषियों ने उससे कहा 'निषीद' अर्थात बैठ जाओ। इसी से निषाद तथा विंध्यगिरि पर्वत के निवासी लाखों म्लेच्छ पैदा हुए। इसके बाद ऋषियों ने 'वेन' के दाहिने हाथ को मथकर एक पुत्र पैदा किया जो इंद्र के समान तेजस्वी था। वह अस्त्र–शस्त्र लेकर पैदा हुआ था और उसने ऋषियों से सेवा मांगी। तब ऋषियों तथा देवताओं ने कहा–

जिससे धर्म की सिद्धि हो उसे निर्भय होकर करो। प्रिय–अप्रिय का विचार छोड़कर काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार को मिटाकर सब प्राणियों से समता का बरताव करो। जो धर्म को छोड़कर अधर्म मार्ग पर चले उसे दंड दो। सत्य पालन में दृढ़प्रतिज्ञ रहो। यह भी निश्चय करो कि ब्राह्मण अदंडनीय होगा, तथा मैं प्रजा को वर्णसंकरता तथा धर्मसंकरता से बचाऊंगा। वेन–पुत्र पृथु ने स्वीकारा कि ब्राह्मण हमारे वंदनीय होंगे। राजा पृथु के पुरोहित हुए महान वेदज्ञ शुक्राचार्य। बालखिल्य तथा सरस्वती तटवर्ती महर्षियों ने उनके मंत्री–कार्य को संभाला। इस प्रकार राजा पृथु विष्णु की आठवीं पीढ़ी में हुए; जैसे–विष्णु, विरजा, कीर्तिमान, कर्दम, अनंग, अतिबल, वेन तथा पृथु। पृथु ने पुरस्कार योग्य को पुरस्कार दिया। सूत को अनूप देश (सागरतटवर्ती प्रांत) तथा मागध को मगध देश दिया। सुना जाता है कि पृथु के समय में पृथ्वी बहुत ऊंची–नीची थी; अतएव उन्होंने इसे समतल बनवाया। देवताओं तथा ऋषियों ने पृथु को राजगद्दी पर बैठाकर उनका अभिषेक किया।

पृथु के राज्य में पृथ्वी धन-धान्य संपन्न थी। बुढ़ापा, दुर्भिक्ष, आधि-व्याधि किसी को नहीं सताते थे। सब निर्भय होकर रहते थे। विष्णु स्वयं राजा पृथु के शरीर में प्रवेश कर गये। इसलिए देव और नरदेव (राजा) समान आदरणीय हैं। भीष्म ने कहा–युधिष्ठिर! इस प्रकार राजा का जो महत्त्व है वह मैंने तुम्हें बताया। आगे जो पूछना हो, पूछो (अध्याय)।

मीमांसा

पौराणिक लोग हर बात को प्रायः ब्रह्मा, विष्णु और महादेव से जोड़ते हैं और लिखने-कहने में अतिशयोक्ति करते हैं। राज-काज चलाने के लिए शास्त्र पूरी दुनिया के अपने-अपने क्षेत्रों में होते थे। कौटलीय अर्थशास्त्र जो ईसा पूर्व चौथी शताब्दी की रचना है, उसमें दस आचार्यों का उल्लेख है जिनके अर्थशास्त्र थे। वे हैं–मनु, बृहस्पति, उशनस, भरद्वाज, विशालाक्ष, पराशर, पिशुन, कौणपदन्त, वातव्याधि और बहुदंती।

ऊपर के प्रसंग में आयी हुई बातों में बहुत सामग्री कौटलीय अर्थशास्त्र की है। वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं–"यह विषय-सूची बृहस्पति आदि राजशास्त्रों के ग्रंथों की जान पड़ती है।" जंघा और हाथ को मथने से उनसे मनुष्य का पैदा होना अयुक्त कथन है। मां-बाप से बच्चे पैदा होते हैं। पृथु अस्त्र-शस्त्र लेकर पैदा हुए भी अयुक्त कथन है। इसका अर्थ है कि वे थोड़ी उम्र से ही राजधर्म से संपन्न थे। मृत्यु की मानसिक कन्या सुनीथा थी इसका मतलब है कि मृत्यु नाम की युवती की मनोवांछित पुत्री सुनीथा थी, परंतु वह भी तभी पैदा हुई होगी जब मृत्यु नामक नारी को कोई पुरुष गर्भाधान किया होगा।

किसी के राज्य की महिमा जब पौराणिक लोग बखानते हैं तब यही लिखते हैं कि उनके राज्य में बुढ़ापा, दुर्भिक्ष, आधि-व्याधि नहीं थी। सब समय देहधारियों की देहों पर बुढ़ापा आता है। आधि-व्याधि भी होती ही हैं।

विष्णु राजा पृथु के शरीर में प्रवेश कर गये। इसका अर्थ है कि राजा को विष्णु भगवान मानकर उसकी भक्ति करो। यह राजतंत्र की बात है। इसमें जनतंत्र नहीं है। ब्राह्मण अदंडनीय है, परंतु इसी ग्रंथ में पीछे आया है कि ब्राह्मण गलत करता है तो उसे भी दंड देना चाहिए।

. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**

. वर्ण तथा आश्रम पर तात्कालिक दृष्टिकोण

युधिष्ठिर ने वर्ण–धर्म के विषय में पूछा–पहली बात यह है कि कौन–सा धर्म है जिसका पालन सब वर्ण के लोग कर सकते हैं। इसके अलावा सभी वर्णों के धर्म क्या हैं?

भीष्म ने कहा–किसी पर क्रोध न करना, सत्य बोलना, धन को बांटकर भोगना, क्षमाभाव रखना, अपनी ही पत्नी में संतुष्ट रहना, बाहर–भीतर पवित्र रहना, किसी से द्रोह न करना, सरलता का बरताव करना, भरण–पोषण करने योग्य का भरण–पोषण करना, ये नौ धर्म सभी वर्णों के लिए उपयोगी हैं।

अब मैं केवल ब्राह्मण–धर्म की बात करता हूं। ब्राह्मणों का पुराना धर्म इंद्रिय–संयम है। इसके साथ उन्हें वेद–शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए। इसी में सब धर्म समाया है। वह सब जीवों से मैत्री भाव रखने से 'मैत्र' कहलाता है।

क्षत्रिय दान करे, परंतु स्वयं दान न ले, स्वयं यज्ञ करे परंतु पुरोहित बनकर किसी का यज्ञ न करावे, वह स्वयं अध्ययन करे किंतु अध्यापन न करे। वह प्रजापालन करे, चोर–लुटेरों का वध करे और युद्ध में पराक्रम प्रकट करे। राजा और कुछ कर पावे या नहीं, वह प्रजा का पालन तथा उनकी रक्षा करके कृतार्थ हो जाता है।

वैश्य का सनातन धर्म है दान करना, अध्ययन करना, यज्ञ करना, पवित्र कर्म से धन–संग्रह करना और पशुओं का पालन करना। इसके अलावा यदि और कुछ करता है, तो वह विपरीत कर्म होगा। प्रजापति ने पशुओं की सृष्टि करके उसके पालन का दायित्व वैश्य को ही सौंप दिया है। वैश्य के मन में यह संकल्प कभी नहीं आना चाहिए कि मैं पशु–पालन नहीं करूंगा।

शूद्रों की सृष्टि प्रजापति ने अन्य तीनों वर्णों की सेवा करने के लिए की है। अतः शूद्रों का शास्त्र विहित कर्म तीनों की सेवा ही है। शूद्र सेवा से ही महान सुख का भागी होगा। शूद्र को कभी किसी प्रकार का धन का संग्रह नहीं करना चाहिए। क्योंकि धन संग्रह करके शूद्र अहंकारी होकर अन्य तीन वर्णों के लोगों को अपने अधीन करना चाहेगा। धर्मात्मा शूद्र राजा की आज्ञा लेकर कोई धार्मिक कृत्य कर सकता है।

तीनों वर्णों के लोग शूद्र का भरण–पोषण अवश्य करें। अपनी सेवा में रहने वाले शूद्रों को अपने उपभोग में लाये हुए छाता, पगड़ी, अनुलेपन, जूते और पंखे देने चाहिए। जो अपने पहनने योग्य न रहें ऐसे फटे–पुराने कपड़े शूद्रों को देना चाहिए। द्विजाति का कर्तव्य है कि वह अपनी सेवा में रहने वाले शूद्र का भरण–पोषण करे। यदि द्विजाति स्वामी संतानहीन हो, तो सेवा में रहने वाले शूद्र

को ही उसका पिंडदान करना चाहिए। यदि स्वामी के पास धन न रह जाय तो शूद्र अपने परिवार के पोषण से बचे हुए धन से स्वामी का भरण-पोषण करे। शूद्र का अपना कोई धन नहीं होता है। उसके सारे धन पर स्वामी का ही अधिकार होता है। यज्ञ का अनुष्ठान तीनों वर्णों तथा शूद्र के लिए भी आवश्यक बताया गया है। इसलिए शूद्र स्वयं वैदिक दीक्षा न लेकर पाक यज्ञों द्वारा यजन करे। यह अन्नदान है।

तीन वर्ण जो यज्ञ करते हैं, उनमें शूद्र सेवा का काम करते हैं, इसलिए यज्ञ में उनका भी भाग है। संपूर्ण यज्ञों में पहले श्रद्धा रूप यज्ञ का ही विधान है। श्रद्धा सबसे बड़ा देवता है। सभी वर्ण के लोग अपने-अपने कर्म द्वारा एक दूसरे के यज्ञ में सहायक होते हैं। सभी वर्णों के लोगों ने यज्ञों का अनुष्ठान किया है।

ब्राह्मण देवताओं के भी देवता हैं। इसलिए ब्राह्मण जो कुछ कहें वही सबके लिए हितकारक है। इसलिए अन्य वर्णों के लोग ब्राह्मणों के बताये अनुसार ही यज्ञ करें, अपने मन से न करें। ऋक, यजु, साम के ज्ञाता ब्राह्मण सर्वोच्च देव हैं। शूद्र वेद-विहीन होने पर भी प्राजापत्य (प्रजापति का भक्त) कहा गया है। अतएव मानसिक संकल्प द्वारा जो भावनात्मक एवं श्रद्धात्मक यज्ञ होता है, उसमें सभी वर्णों का अधिकार है। यह ध्यान रखना चाहिए कि विधाता ने अन्य तीनों वर्णों का यज्ञ कराने के लिए ब्राह्मण को पैदा किया है।

विधाता ब्राह्मण से ही अन्य तीनों वर्णों की सृष्टि करते हैं, अतएव शेष तीन वर्ण ब्राह्मण के समान ही सरल तथा उनके जाति-भाई या कुटुंबी हैं। ब्राह्मण की ही संतान अन्य तीनों वर्ण के लोग हैं। अतएव ब्राह्मण के साथ सबकी अभिन्नता है। मनुष्य चोर, पापी, महापापी हो, तो भी उसे यज्ञ करना चाहिए। यज्ञ करने वालों को सभी लोग महान कहते हैं। अतएव सभी वर्णों के लोगों को सदैव सभी प्रकार का यज्ञ करना चाहिए, यही शास्त्रों का निर्णय है।

भीष्म ने आगे कहा-युधिष्ठिर! ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और भैक्ष्यचर्य (संन्यास) ये चार आश्रम हैं। चौथे संन्यास आश्रम का अवलंबन केवल ब्राह्मणों ने किया है। द्विज-कुमार मुंडन और यज्ञोपवीत के बाद वेदाध्ययन पूर्ण करके गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करे। यज्ञ करे, अपनी पत्नी से संतान पैदा करे और अपने मन तथा इंद्रियों का संयम करके पत्नी को साथ लेकर अथवा अकेला ही वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करे। आरण्यक शास्त्रों का अध्ययन करके वानप्रस्थ धर्म का पालन करे। उसके बाद ब्रह्मचर्यपूर्वक संन्यास आश्रम में प्रवेश करे। संन्यास लेने वाला मनुष्य अविनाशी ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है। ब्रह्मचारी ब्राह्मण के मन में यदि मोक्ष की तीव्र अभिलाषा जग जाय तो वह ब्रह्मचर्य आश्रम से ही सीधा संन्यास ग्रहण करने का अधिकारी होता है।

संन्यासी मन–इंद्रियों को अपने वश में रखकर मुनिवृत्ति से रहे। वह किसी वस्तु की कामना न करे। अपने लिए मठ या कुटी न बनावे। वह सदैव विचरता रहे और जहां सूर्यास्त हो वहां ठहरकर विश्राम करे। उसे जो कुछ प्रारब्धवश मिल जाय उसी से जीवन–निर्वाह करे। सारी आशा–तृष्णा त्यागकर सबसे समता का बरताव करे। भोगों से दूर रहे और मन में कोई विकार न लावे। इसीलिए संन्यासाश्रम को 'क्षेमाश्रम' अर्थात कल्याण प्राप्ति का आश्रम कहा जाता है।

गृहस्थ वेदोक्त शुभकर्म करे। केवल अपनी पत्नी से संतान पैदा करे, मननशील रहे। शठता, कुटिलता और क्रूर कर्म से दूर रहे। संतुलित आहार करे। उपकार करने वाले का कृतज्ञ रहे। सत्य बोले। सबसे कोमल बरताव करे। किसी के साथ क्रूरता का बरताव न करे। इंद्रियों का संयम करे। गुरु तथा शास्त्रों की आज्ञा के अनुसार चले। ब्राह्मणों को अन्नदान करे। ईर्ष्या–द्वेष से दूर रहे। अन्य आश्रमों को भोजन दान करे। इस विषय में एक नारायण–गीत है–गृहस्थ इस लोक में सत्य, सरलता, अतिथि–सत्कार, धर्म, अर्थ, अपनी पत्नी तथा सुख का सेवन करे। ऐसा होने से ही वह परलोक में भी सुख पाता है।

ब्रह्मचारी वेदमंत्रों का चिंतन करे। अपने शरीर पर मैल और कीचड़ लगे हों तो भी गुरु की सेवा करे तथा एकमात्र आचार्य की परिचर्या में लगा रहे। वह मन–इंद्रियों को वश में रखे तथा वेदों का स्वाध्याय करते हुए सदैव कर्तव्य–कर्मों का पालन करे और गुरुगृह में निवास करे। जीवन–निर्वाह के उद्देश्य से किये जाने वाले यजन–याजन, अध्ययन–अध्यापन तथा दान और प्रतिग्रह, इन छह कर्मों से अलग रहे। किसी भी असत कर्म में प्रवृत्त न हो।

चारों आश्रम ब्राह्मणों के लिए विहित हैं। अन्य तीन वर्णों के लोग इनका अनुसरण नहीं करते। क्षत्रियों का प्रधान धर्म है जो हिंसा प्रधान है। अतएव यह कर्म ब्राह्मणों के लिए आदर्श नहीं हो सकता। यदि ब्राह्मण अन्य तीन वर्णों के कर्मों को करता है तो वह लोक–परलोक दोनों से भ्रष्ट होता है। यदि ब्राह्मण अपने ब्रह्मकर्म से अलग है जैसे वेदाध्ययन तथा तदनुसार कर्म से, तो वह दास, कुत्ते और भेड़िये की तरह है (,)। जो ब्राह्मण यजन–याजन, अध्ययन–अध्यापन तथा दान–प्रतिग्रह में प्रवृत्त है, क्रमशः चारों आश्रमों के कर्मों का पालन करता है, धर्म के कवच से सुरक्षित होता है, मन को वश में रखता है, जिसके मन में कोई कामना नहीं होती, जो बाहर–भीतर शुद्ध, सत्यपरायण तथा उदार होता है, उसे अविनाशी स्थिति प्राप्त होती है।

ब्याज-व्यापार, खेती, पशु-पालन वैश्य का कर्म है, प्रजापालन क्षत्रिय का कर्म है और ब्राह्मणों का वेदाध्ययन मुख्य कर्म है। मनुष्य समय के उलट-फेर तथा स्वभाव से प्रेरित होकर उत्तम, मध्यम तथा अधम कर्म करता है।

अंततः राजधर्म ही श्रेष्ठ है। जैसे हाथी के पदचिह्न में सभी प्राणियों के पदचिह्न समा जाते हैं वैसे ही राजधर्म में ही सभी धर्म विलीन हो जाते हैं, क्योंकि राजधर्म से ही सभी धर्मों की सुरक्षा होती है (अध्याय -)।

मीमांसा

ज्ञानी, शासक, व्यवसायी, शिल्पी और श्रमिक इन पांच वर्गों का वर्णन वेदों में आता है; और ये पांचों वर्गों के मनुष्य सारे संसार में सब समय रहे हैं और रहेंगे। वैदिक युग में इनमें कोई भेदभाव तथा छुआछूत नहीं थी। आगे चलकर चालाकी बढ़ी और कहा गया कि विधाता ने ही चारों वर्णों के कर्म अलग-अलग बता दिये हैं। यह सब अपने स्वार्थ-साधन का हथकंडा था। यद्यपि महाभारत में वर्णव्यवस्था की स्थिति में नरमी आयी है। वस्तुतः मनुष्य मूलतः समान है। वे अपने गुण-कर्मों से ऊंचा-नीचा बनते हैं।

आज न इस वर्णव्यवस्था का अस्तित्व है और न कहीं उपयोग है। सद्गुरु कबीर को मानव के बीच की विषमता खटकी थी, इसलिए उन्होंने इस विषय में भारत में पहली बार झकझोरकर बेलाग भाषा में कहा था और उन्होंने चाहा था कि हर मनुष्य का सभी दिशाओं में समान अधिकार हो और वह अपनी योग्यता के अनुसार आगे बढ़े तथा कोई किसी को अछूत न माने। भारत स्वतंत्र होने पर बीसवीं शताब्दी में कबीर की मनसा के अनुसार भारत सरकार के कानून बन गये। यह कबीर-विचारों तथा मानवता की सच्ची विजय है।

आज हर आदमी वेद पढ़ सकता है और किसी दिशा में अपनी उन्नति करके उच्च पदों पर जाकर अपना कर्म कर सकता है। मानव मूलतः समान है। आज कोई किसी को यदि अछूत कहे तो वह दंड का अधिकारी है।

सामान्य मनुष्य विवाह करके गृहस्थ होता ही है। जिसे परम शांति की तीव्र इच्छा होती है वह विरक्त होकर साधना में लग जाता है। इसके लिए मानव मात्र स्वतंत्र है। गृहस्थी में रहकर भी अंततः शांति ही परम उपलब्धि है। अतएव समझदार गृहस्थ वहां भी रहकर भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य की साधना करते हुए कल्याण मार्ग में आगे बढ़ता है।

या संज्ञा विहिता लोके दासे शुनि वृके पशौ। विकर्मणि स्थिते विप्रे सैव संज्ञा च पाण्डव (शांति पर्व, ,)। "हे पांडव! संसार में गुलाम, कुत्ते, भेड़िये

तथा अन्य पशुओं के लिए जो संज्ञा दी गयी है, अपने वर्ण–धर्म के विपरीत कर्म में लगे हुए ब्राह्मण के लिए भी वही संज्ञा दी जाती है।" इस आदेश के अनुसार आज कौन अपने को ब्राह्मण कहेगा?

. क्षात्रधर्म सर्वोपरि है, उसी से बर्बर और सामान्य जनता का हित है

भीष्म ने कहा–युधिष्ठिर! चारों आश्रमों के धर्म, संन्यास–धर्म तथा लौकिक और वैदिक सभी धर्म क्षात्रधर्म में प्रतिष्ठित हैं। यदि क्षात्रधर्म न हो, कड़ा शासन न हो, तो मनुष्य अपनी अभीष्ट वस्तु न पा सकता है और न पा जाने पर उसे सुरक्षित रख सकता है। आश्रमवासियों का सनातन धर्म अनेक द्वारों वाला तथा अप्रत्यक्ष है। विद्वानों ने शास्त्रों द्वारा ही उसके स्वरूप का निरूपण किया है। दूसरे विद्वान अपनी सुंदर युक्तियों द्वारा जनता के विश्वास को नष्ट कर देते हैं; अतएव जनता प्रत्यक्ष उदाहरण न पाकर परलोक के विचारों से पतित हो जाती है। जो धर्म प्रत्यक्ष, अधिक सुखप्रद, आत्म–साक्षित्व युक्त, छल–रहित तथा सर्वलोकोपकारी है, वह धर्म क्षत्रियों में प्रतिष्ठित है। अतएव संपूर्ण धर्म राजधर्म में प्रतिष्ठित है; क्योंकि राजधर्म से ही सबकी सुरक्षा होती है।

पुरानी बात है, एक समय प्रसिद्ध चक्रवर्ती नरेश मांधाता ने नारायण के दर्शन पाने के लिए एक यज्ञ किया। नारायण ने नारद के रूप में आकर उनसे कहा–नारायण का दर्शन दुर्लभ है। तुम जो पूछना चाहो, पूछो। मांधाता ने कहा–"मेरे राज्य में यवन, किरात, गांधार, चीन, शबर, बर्बर, शक, तुषार, कंक, पह्लव, आंध्र, मद्रक, पौंड्र, पुलिंद, रमठ तथा कांबोज देशों के निवासी म्लेच्छ समुदाय सब तरफ निवास करते हैं। ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों की भी संतानें अपने धर्म से पतित हैं। वे सब चोरी–डकैती से अपनी जीविका चलाते हैं। ऐसे लोग धर्म का आचरण किस प्रकार करेंगे; मेरे–जैसे राजा इन्हें किस तरह धर्म–मर्यादा में स्थापित करें?"

. **यवनाः किराता गान्धाराश्चीना शबरबर्बराः।**
शकास्तुषाराः कंकाश्च पह्लवाश्चान्ध्रमद्रकाः
पौण्ड्राः पुलिन्दा रमठाः काम्बोजश्चैव सर्वशः।
ब्रह्मक्षत्रप्रसूताश्च वैश्याः शूद्राश्च मानवाः
कथं धर्मांश्चरिष्यन्ति सर्वे विषयवासिनः।
मद्विधैश्च कथं स्थाप्याः सर्वे वै दस्युजीविनः **शांति पर्व, अध्याय**

नारद ने कहा–उन दस्युवृत्ति वाले मनुष्यों को चाहिए कि वे भी अपने माता-पिता, आचार्य, गुरु और आश्रमवासी मुनियों की सेवा करें। वे वेदोक्त धर्म-कर्म भी करें। पितरों का श्राद्ध करना, कुआं खोदवाना, जलप्याऊ चलाना, पथिकों के विश्राम के लिए धर्मशाला बनवाना उनका कर्तव्य है। उन्हें समय-समय से ब्राह्मणों को भी दान देना चाहिए। अहिंसा, सत्यभाषण, क्रोधरहित बरताव, दूसरों की आजीविका तथा बंटवारे में मिली हुई संपत्ति की रक्षा, स्त्री-पुत्रों का भरण-पोषण, भीतर-बाहर की शुद्धि रखना और वैर भाव का त्याग करना उन सब का धर्म है। उन्हें सभी प्रकार का यज्ञ करना चाहिए और उसमें ब्राह्मणों को खूब दान देना चाहिए। सभी चोर-लुटेरों को अधिक खर्च वाला पाक-यज्ञ (अन्नदान) करना चाहिए।

मांधाता ने कहा–"सभी वर्णों और आश्रमों में भी डाकू और चोर देखे जाते हैं। वे अनेक प्रकार के वेषभूषाओं में अपने को छिपाये रखते हैं।"

नारद ने कहा–जब राजा की दुष्टता के कारण शासन नष्ट हो जाता है, तब राजधर्म भ्रष्ट हो जाता है। तब जनता कर्तव्य-अकर्तव्य का विवेक खो बैठती है। "इस सत्युग के समाप्त होने पर अनेक वेषधारी असंख्य भिक्षु प्रकट हो जायंगे और वे विभिन्न आश्रमों की कल्पना करने लगेंगे।" लोग काम-क्रोध के वश हो जायंगे। वे पुरातन धर्म की बात नहीं सुनेंगे। जब राजा दंड नीति के द्वारा पापियों को पाप कर्म से रोकते रहते हैं, तब सनातन धर्म का लोप नहीं होता है। संपूर्ण लोकों का गुरु राजा है, जो उसका अपमान करता है उसके किये हुए दान-धर्म कभी सफल नहीं होते। राजा मनुष्यों का अधिपति, सनातन देवस्वरूप और धर्म की इच्छा रखने वाला है। अतएव चाहे गृहस्थ हो या विरक्त क्षात्रधर्म की जो अवहेलना करेगा, वह नष्ट हो जायगा। भीष्म ने कहा–युधिष्ठिर! तुम क्षात्रधर्म का आचरण करो, प्रजा की रक्षा करो (अध्याय -)।

मीमांसा

मांधाता प्राक् इतिहास काल के चक्रवर्ती सम्राट हैं। इनका और काल्पनिक नारायण का जोड़ा भिड़ाकर किसी भागवत भक्त ने गुप्तयुग की समस्या का समाधान करना चाहा है। वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं–

. **दृश्यन्ते मानुषे लोके सर्ववर्णेषु दस्यवः।**
लिंगान्तरे वर्तमाना आश्रमेषु चतुर्ष्वपि ,

. **असंख्याता भविष्यन्ति भिक्षवो लिंगिनस्तथा।**
आश्रमाणां विकल्पाश्च निवृत्तेऽस्मिन् कृते युगे ,

"इसके बाद उस युग की एक महत्त्वपूर्ण समस्या को लिया गया है। उसे किसी भागवत लेखक ने राजधर्म के अंतर्गत डालकर उसका समाधान भी सुझाया है। समस्या यह थी कि गुप्त युग के पूर्व अनेक विदेशी जातियां इस देश में आ गयी थीं और देश के भिन्न–भिन्न भागों में बस गयीं थीं। वे दस्युओं की भांति रहती थीं। भारतीय सामाजिक व्यवस्था के नियमों को उन्होंने स्वीकार नहीं किया था। अतः यहां के राजाओं के सामने यह समस्या थी कि उन्हें कैसे आर्य धर्म में दीक्षित किया जाय। यही प्रश्नोत्तर के रूप में इस अध्याय का विषय है।"

अग्रवाल जी यवन आदि जातियों का परिचय इस प्रकार कराते हैं–

. पह्लव–अंग्रेजी में इनका नाम पार्थियन है, जो ईरान के एक प्रदेश पार्थिया से आये थे।
. मद्रक–ये पंजाब के मद्रक यवन थे जो भारतीय इतिहास में इंडोग्रीक कहलाते हैं। इनकी राजधानी शाकल या स्यालकोट थी। कर्ण पर्व में भी इन्हें मद्रक यवन कहा है।
. यवन–ये संभवतः वाह्लीक या बल्ख के यूनानी थे जिन्हें अपने यहां वाह्लीक यवन कहा जाता था।
. चीन–मध्य एशिया में ये तुर्किस्तान के निवासी थे।
. शबर–विन्ध्याटवी के वनों में रहने वाले।
. शक–शक स्थान से आने वाले क्षहरात शक और कुषाण शक भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने तक्षशिला, मथुरा और उज्जैन में कई सौ वर्ष तक राज्य किया। कनिष्क, हुविष्क आदि सम्राट शक जाति के थे।
. तुषार–ये भी मध्य एशिया से आये थे, जो श्वेत रंग के होने के कारण श्वेत हफ्ताल भी कहलाते थे।
. ओड्र–उड़ीसा के आदिवासी।
. पुलिंद–विंध्यक्षेत्र में रहने वाले।
. रमठ–हिंगुल से गजनी तक रहने वाले।
. कांबोज–वड्क्षु के ऊपरी हिस्से में रहने वाली जाति।
. कंक–यह मध्य एशिया के सुग्ध या सोग्डियाना प्रदेश में रहने वाली जाति थी जिसका उल्लेख भागवत के 'आभीरकंका यवनाः खशादयः'

. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**

में आया है। ये भी भागवत सांचे में ढल गये थे। इनमें से अधिकांश कांगड़ा में आबाद हुए।

म्लेच्छ और ब्रह्मक्षत्र–ब्रह्मक्षत्र लिच्छवियों का नाम था। उन्हें शर्मक–वर्मक भी कहते थे। उनकी राजकुमारी गुप्त सम्राट चंद्रगुप्त से ब्याही गयी। तब से गुप्त सेना में लिच्छवियों की एक मजबूत टुकड़ी भी रहने लगी। मत्स्य और लिंग पुराणों में इसका उल्लेख है। अभी तक लिच्छवियों के वंशज अपने को त्रिकर्मा ब्राह्मण कहते हैं। वे ही जेत्थरिया या भुइंहार हैं।

वासुदेवशरण अग्रवाल ने आंध्र, बर्बर, किरात और गांधार की पहचान नहीं दी है।

आगे आया है–''इस सत्युग के समाप्त होने पर अनेक वेष में असंख्य भिक्षु प्रकट हो जायंगे और वे विभिन्न आश्रमों की कल्पना करने लगेंगे।'' उक्त निर्देश बौद्ध भिक्षुओं के लिए है। यह सब बौद्धमत के विस्तार काल में लिखा गया है, संभवतः ईसा के बाद, किंतु मिथ्या रोब गांठने के लिए मानो यह बात सत्युग में कही जा रही है कि आगे ऐसा होगा। पुराण लेखकों की बात ऐसी ही होती है। वे वर्तमान की बातें लाखों वर्ष पीछे जाकर लिखते हैं–ऐसा होगा।

. राजा और राजशासन की आवश्यकता

युधिष्ठिर ने पूछा–पितामह! आप यह बताइए कि राष्ट्र में रहने वाले मनुष्यों का क्या कर्तव्य है? भीष्म ने कहा–राष्ट्र में रहने वाले लोगों का यह परम कर्तव्य है कि वे किसी योग्य व्यक्ति को राजगद्दी पर बैठाकर उसका अभिषेक करें; क्योंकि बिना राजा के राज्य निर्बल होता है। उसे डाकू और लुटेरे लूटते और सताते हैं। जिस देश में कोई राजा नहीं होता है, वहां धर्म की स्थिति नहीं होती। वहां एक दूसरे को लूटने में लगे रहते हैं। वहां अराजकता होती है। उस देश को धिक्कार है। वेद कहते हैं कि प्रजा जो राजा का वरण करती है, वह मानो इंद्र का ही वरण करती है। अतएव लोकहित चाहने वाले को राजा को इंद्र के समान ही पूजना चाहिए। मैं तो यह मानता हूं कि जिस देश में राजा न हो वहां रहना ही नहीं चाहिए।

जो गाय कठिनाई से दुही जाती है, उसे बड़ा दुख उठाना पड़ता है, परंतु जो सुगमता से दूध दुहा देती है, वह कष्ट नहीं पाती। जो लकड़ी स्वयं झुक जाती है, उसे झुकाने का प्रयास नहीं करना पड़ता। उक्त उदाहरण ध्यान में रखकर

. **भारत सावित्री, पृष्ठ - ।**

दुर्बल को बलवान के सामने स्वयं झुक जाना चाहिए। बलवान को प्रणाम करने का अर्थ है इंद्र को प्रणाम करना। उन्नति चाहने वालों को अपना राजा अवश्य बना लेना चाहिए। जहां अराजकता है, उस देश में धन और स्त्री सुरक्षित नहीं रह सकते। अराजक दशा में बदमाश दूसरे के धन को लूट लेते हैं, परंतु जब उसके धन को दूसरे बदमाश लूटते हैं, तब उसे राजा की आवश्यकता का अनुभव होता है। अराजक देश में पापी भी सुखी नहीं रह सकता। उसके धन को दूसरे कई लोग ले जाते हैं और उसके भी धन को बहुत बदमाश मिलकर लूट लेते हैं। अराजक स्थिति में मनुष्यों को गुलाम बना लिया जाता है और स्त्रियों का अपहरण हो जाता है। जैसे बड़ी मछलियां छोटी मछलियों को खा लेती हैं, वैसे अराजक देश में बलवान दुर्बलों को नोच खाते हैं। राजा के न रहने पर पूर्वकाल में एक दूसरे द्वारा लूटे गये हैं।

युधिष्ठिर! हमने सुना है कि एक बार प्रजा ने मिलकर एक नियम बनाया कि कटु बोलने वालों, कठोर दंड देने वालों, पराये धन का अपहरण करने वालों तथा परायी स्त्रियों से दुराचार करने वालों को समाज से निकाल देना चाहिए। सभी वर्ण के लोग ऐसा विश्वसनीय काम करके सुख से रहने लगे। कुछ समय तक इस ढंग से काम चलता रहा, परंतु आगे चलकर पुनः दुर्व्यवस्था फैल गयी। तब सारी प्रजा दुखी होकर ब्रह्मा जी के पास गयी और उसने कहा–भगवन! हमें एक अच्छा राजा दीजिए जो हम लोगों का पालन तथा रक्षा करे और हम उसकी पूजा करें। तब ब्रह्मा जी ने मनु को राजा होने की आज्ञा दी, परंतु मनु ने यह काम नहीं स्वीकारा। मनु ने ब्रह्मा जी से कहा–भगवन! मैं पाप कर्म से बहुत डरता हूं। राज्य करना बहुत कठिन काम है। गलत आचरण करने वाले मनुष्यों पर शासन करना तो और भी कठिन है।

तब पूरी प्रजा ने मनु से कहा–आप डरें मत। पाप उनको लगेगा जो उसे करेंगे। हम लोग आपके खजाना की बढ़ोत्तरी के लिए पचास गाय में से एक गाय और स्वर्ण-राशि में से भी पचासवां हिस्सा आपको देंगे और अनाज की उपज का दसवां भाग आपको देंगे। जब हमारी बहुत-सी कन्याएं विवाह योग्य होंगी, तब उनमें जो अधिक सुंदरी होगी, वह आपको शुल्क के रूप में देंगे। जैसे देवता इंद्र के पीछे चलते हैं, वैसे हमारे प्रधान मनुष्य शस्त्र लेकर आपके पीछे चलेंगे। प्रजा का सहयोग पाकर आप प्रबल-दुर्जय और प्रतापी राजा होंगे। आपसे सुरक्षित प्रजा जो कुछ धर्म-कार्य करेगी, उसका चौथा पुण्य आपको मिलता रहेगा। आप तपते हुए सूर्य के समान अस्त्र-शस्त्र लेकर दुष्टों का दलन कीजिए, सर्वदा आपकी जय हो।

जब मनु प्रजा का समर्थन पाकर दुष्टों का दमन करते हुए राज्य करने लगे, तब उनसे डरकर पापी लोग धर्म के मार्ग पर आ गये। मनु प्रजा पर शासन करते हुए चारों ओर घूमने लगे। अतएव उन्नति चाहने वाली प्रजा को एक उत्तम राजा अवश्य बना लेना चाहिए। फिर जैसे शिष्य गुरु का तथा देवता इंद्र का नमस्कार करते हैं, वैसे प्रजा राजा का नमस्कार करे।

अपने लोग जिसका आदर करते हैं, उसका आदर दूसरे लोग भी करते हैं और जो अपने लोगों द्वारा अनादर पाता है उसे दूसरे लोग भी अनादर की दृष्टि से देखते हैं। यदि अपने राजा का दूसरे द्वारा पराभव होता है तो समस्त प्रजा के लिए यह बात दुखदायी होती है। इसलिए प्रजा को चाहिए कि वह राजा को छत्र, वाहन, वस्त्र, आभूषण, भोजन, पान, घर, आसन, शय्या आदि सब प्रकार की सामग्री भेंट में दे। इस प्रकार प्रजा का सहयोग पाकर राजा बलवान होता है। राजा को चाहिए कि वह प्रजा से मुस्कुराते हुए बात करे। यदि प्रजा के लोगों में से कोई कुछ पूछे, तो राजा मधुर वाणी में उत्तर दे। राजा प्रजा का कृतज्ञ तथा उनसे स्नेह रखने वाला हो। उपभोग में आने वाली वस्तुओं को यथायोग्य बांटकर उनका उपभोग करे। मन-इंद्रियों को वश में रखे। जो उसकी ओर देखे, उसे वह भी देखे। वह स्वभाव से कोमल, मधुर और सरल रहे।

युधिष्ठिर ने पूछा कि ब्राह्मण लोग राजा को देवस्वरूप क्यों बताते हैं? भीष्म ने कहा–यही बात पुराकाल में कौसल नरेश वसुमना ने बुद्धि-निधान बृहस्पति से पूछी थी–प्रजा की वृद्धि कैसे होती है, उनका क्षय कैसे होता है और किस देवता की पूजा करने से अक्षय सुख की प्राप्ति होती है? बृहस्पति ने कहा–संसार में राजा ही धर्म है। धर्म का मूल कारण राजा है। राजा के भय से प्रजा एक दूसरे को नहीं लूटती है। राजा ही अपने शासन के बल पर प्रजा को मर्यादा में रखता है। राजा के बिना प्रजा आपस में लड़कर तथा एक दूसरे को चोटकर वैसे ही नष्ट हो जाती है जैसे संकुचित जल में मछलियां एक दूसरे को चोट पहुंचाकर नष्ट हो जाती हैं। यदि राजा रक्षक न हो तो बलवान लोग दुर्बल लोगों की बहू-बेटियों को उठा ले जायं और घर की रक्षा करने वालों को मार डालें। यदि राजा न हो तो स्त्री, पुत्र, धन तथा घर-बार कोई भी वस्तु को कोई अपना कहने में समर्थ नहीं हो सकता। सब का सब कुछ बलवानों द्वारा लूट लिया जाय। बिना राजा प्रजा का सब कुछ लुट जायगा, उन पर दुष्टों द्वारा मार पड़ेगी। राजा के बिना धनवानों का धन लूट लिया जायगा। राजा के बिना तो देश डाकुओं का अड्डा बन जायगा। राज-शासन के बिना खेती, व्यापार, धर्म-कर्म सब चौपट हो जायगा। राज-शासन के बिना हाथ की वस्तुएं बदमाश छीन लेंगे, व्यभिचार फैल जायगा और सारी प्रजा पीड़ित हो जायगी।

राजा से रक्षित प्रजा दरवाजा खोलकर निश्चिंत होकर सोती है, स्त्रियां आभूषणों से सजकर स्वतंत्र एवं निर्भय होकर अकेली मार्ग में आती–जाती हैं। राजा के शासन में लोग अपने धर्म का पालन करते हैं, कोई किसी को कष्ट नहीं देता है और लोग एक दूसरे के साथ अच्छा व्यवहार करते हैं। जिस राजा के न रहने पर सर्वत्र भय का वातावरण रहता है तथा राजा का शासन रहने पर लोग निर्भय होकर रहते हैं, उस राजा की पूजा कौन नहीं करेगा? यह भी एक मनुष्य है, ऐसा मानकर राजा की कभी अवहेलना नहीं करना चाहिए। राजा तो मनुष्य रूप में एक महान देवता है।

बृहस्पति ने आगे कहा–राजा समयानुसार पांच रूप धारण करता है। वह कभी अग्नि, कभी सूर्य, कभी मृत्यु, कभी कुबेर और कभी यमराज बन जाता है। राजा पापियों के लिए उग्र बनकर उन्हें जला देता है, यही उसका अग्नि रूप होना है। जब राजा अपने गुप्तचरों द्वारा प्रजा की देख–भाल करता और उनकी रक्षा करते हुए चलता है, तब वह सूर्य रूप होता है। जब राजा पापियों को मारता है, तब वह मृत्यु रूप होता है। जब राजा दंड द्वारा उन्मादियों को मर्यादा में लाकर प्रजा को धर्ममार्ग में चलाता है तब वह यमराज माना जाता है। जब राजा दुष्टों के धन को छीनता है और सज्जनों को धन की सहायता करता है, तब वह कुबेर कहलाता है।

प्रजा को चाहिए कि वह राजा की निंदा न करे, उसके धन को न चुराये। राजा के धन को हड़पने वाला तत्काल काल का ग्रास होता है। भोज, विराट, सम्राट, क्षत्रिय, भूपति और नृप कहकर जिस राजा की स्तुति की जाती है, उस प्रजापालक की पूजा कौन नहीं करेगा? अतएव समझदार मनुष्य राजा का आश्रय ले। राजा को चाहिए कि वह कृतज्ञ, विद्वान, महामना, समर्पित, जितेंद्रिय, धर्मपरायण और नीतिकुशल मंत्री का आदर करे। ऐसे ही समर्पित, इंद्रियजित तथा वीर मनुष्य को सेनापति बनाये। राजा प्रजा का श्रेष्ठ हृदय, गति, प्रतिष्ठा और उत्तम सुख है। राजा का आश्रय लेने वाले मनुष्य के ही लोक–परलोक सफल हैं। राजा भी इंद्रियजित, सत्य और सौहार्द के साथ प्रजा का पालन करे और लोकमंगलकारी काम करे।

बृहस्पति का ऐसा उपदेश पाकर राजा वसुमना प्रजा का प्रयत्नपूर्वक पालन करने लगे (अध्याय –)।

मीमांसा

कड़ा शासन हुए बिना प्रजा को कष्ट मिलता ही है। इसलिए राजा की आवश्यकता है। राजा में श्रद्धा रखना भी उचित ही था। आज विश्व में प्रजातंत्र

का बोलबाला है। जो राजतंत्र से भी उत्तम है। कड़ा शासन की आवश्यकता सब समय है। यदि कानून और शासन का डर न हो, तो आज भी रास्ता चलना कठिन हो जाय। यहां तक कि घर में रहना कठिन हो जाय। आज एक ही दिन के लिए कानून और शासन हटा लिया जाय, तो भयंकर लूट-मार फैल जाय। अतएव कानून और शासन सत्ता की अत्यंत आवश्यकता है। राजतंत्र में राजा को पूज्य देवता माना गया है, जनतंत्र में प्रधानमंत्री तथा मंत्री को ऐसा नहीं माना जाता; फिर भी उनका सम्मान तो किया ही जाता है।

. राजा के कर्तव्य, राजा ही युग बनाता है

युधिष्ठिर ने भीष्म से राजा के कर्तव्यों के विषय में पूछा। भीष्म ने कहा- राजा अपने मन तथा इंद्रियों पर विजयी हो, तभी वह प्रजा का पालन ठीक से कर सकता है और शत्रुओं पर विजय कर सकता है। राजा को चाहिए कि वह किले में, देश की सीमा पर, नगर तथा गांव के बगीचों में सेना रखे। जिनकी पूरी परीक्षा कर ली गयी हो, जो बुद्धिमान होकर भी गूंगे, बहरे, अंधे सरीखे दिखायी पड़ सकते हों और भूख-प्यास सहने की शक्ति रखते हों, तथा परिश्रम से न थकते हों, उन्हें गुप्तचर बनाकर आवश्यक कार्यों में लगाना चाहिए। राजा अपने मंत्रियों, मित्रों तथा अपने पुत्र पर भी गुप्तचर रखे। नगर, जनपद, व्यायामशालाओं में भी गुप्तचर नियुक्त करे; परंतु गुप्तचर भी एक दूसरे को न पहचानते हों। बाजारों, पर्यटन स्थलों, सामाजिक उत्सवों, भिक्षु समुदायों, बगीचों, उद्यानों, विद्वानों की सभाओं, विभिन्न प्रदेशों, चौराहों, सभाओं और धर्मशालाओं में शत्रुओं के भेजे हुए गुप्तचरों का पता लगाने के लिए अपने गुप्तचर नियुक्त करे। राजा शत्रुओं के गुप्तचरों का पता लगाता रहे। शत्रु के गुप्तचरों का पहले ही पता लग जाने पर देश का बड़ा हित होता है। यदि राजा को लगे कि हम निर्बल हैं तो बलवान शत्रु से समझौता कर ले। राजा अपने राज-काज को चलाने के लिए विद्वान तथा नीतिज्ञ लोगों से राय ले, वे चाहे ब्राह्मण हों, क्षत्रिय हों, वैश्य हों या शूद्र हों।

अपनी हीनता और दुर्बलता का पता शत्रु को लगने के पहले उससे समझौता कर लेना चाहिए। यदि समझौता करने से लाभ दिखे, तो इस काम में बिलंब नहीं करना चाहिए। अपने अपराधियों को पहले ही दबा दे। जो राजा हमारा न अपकार कर सकता है और न उपकार, उसकी उपेक्षा कर देना चाहिए। राज्य के हित के लिए राजा को चाहिए कि वह सदैव युद्ध को टालता रहे। बृहस्पति ने कहा है कि साम, दान, भेद से ही राजा की आय बतायी गयी है।

इसी में राजा को संतुष्ट रहना चाहिए। राजा प्रजा से उसकी आमदनी का जो छठां भाग ग्रहण करता है, वह प्रजा की ही सेवा में लगाये। मत्त, उन्मत्त, दस्यु, तस्कर, प्रतारक, शठ, लंपट, जुआरी, जालिया लेखक और घूसखोर दंडनीय हैं। इनसे तुरंत दंड लेकर राजा प्रजा की रक्षा करे। राजा प्रजा का पुत्रवत पालन करे, परंतु जब न्याय करना हो, तब पक्षपात न करे। राजा को जब न्याय देना हो, तब वादी–प्रतिवादी की बात सुनने के लिए अपने पास ऐसे विद्वानों को बिठाकर रखना चाहिए, जो सर्वार्थ दर्शी हों। सच्चे न्याय पर ही राज्य प्रतिष्ठित रहता है। राजा अपने विश्वसनीय बुद्धिमानों को सोने आदि की खानों, नमक, अनाज आदि की मंडियों, नाव के घाट तथा हाथियों के यूथों पर नियुक्त करे। राजा शासन में ढील न करे। राजा वेद–वेदांग का ज्ञाता, बुद्धिमान, तपस्वी, दानशील तथा यज्ञपरायण हो।

काल राजा का कारण है कि राजा काल का कारण है, यह शंका उदय होने पर समझना चाहिए कि राजा ही काल का कारण है। जब राजा देश में कड़ा शासन रखता है तब समझ लो कि सत्युग का प्रारंभ हो गया। सुव्यवस्थित शासन में प्रजा सुखी रहती है, निर्भय होकर अपना काम करती है। जब राजा का शासन एक चौथाई क्षीण हो जाता है तब त्रेता लग जाता है। जब राजा का शासन आधा ढील हो जाता है तब द्वापर लग जाता है और जब राजा का शासन एकदम भ्रष्ट हो जाता है, तब कलियुग आ जाता है। तब सर्वत्र त्राहि–त्राहि मच जाती है। "राजा ही सत्युग का बनाने वाला है और राजा ही त्रेता, द्वापर और चौथे कलियुग का निर्माता है।" राजा जब अपने पुरुषार्थ से सत्युग बनाता है तब वह उच्च सुख का भागी होता है; और जैसे वह त्रेता, द्वापर तथा कलियुग बनाता जाता है वैसे स्वयं नीचे गिरता जाता है। अतएव राजा सुदृढ़ शासन का पालन करते हुए प्रजा की सेवा में सदैव लगा रहे (अध्याय)।

मीमांसा

राजा कालस्य कारणम् (,)। राजा ही युग बनाता है। इसी प्रकार समझना चाहिए कि किसी कुल, परिवार, समाज, संगठन एवं पार्टी का अगुआ ही अपने कुल, परिवार आदि के लिए युग बनाता है। अच्छे मनुष्य जहां रहते हैं वहीं चमक आ जाती है। अच्छा मनुष्य अच्छा युग बनाता है और बुरा मनुष्य बुरा युग बनाता है।

. **राजा कृतयुगस्रष्टा त्रेताया द्वापरस्य च।**
युगस्य च चतुर्थस्य राजा भवति कारणम् शांति पर्व, ,

. राजा के छत्तीस गुण

युधिष्ठिर ने पूछा–राजा के गुण कौन–कौन हैं जिससे वह सफल होता है?
भीष्म ने कहा–राजा के छत्तीस गुणों को मैं बताता हूं, सुनो–

. धर्म का आचरण करे, परंतु कटुता से दूर रहे।
. आस्तिक रहे और दूसरे के साथ प्रेम का बरताव करे।
. धन–संग्रह में क्रूरता का बरताव न करे।
. मर्यादापूर्वक विषयों का उपभोग करे।
. प्रिय भाषण करे, परंतु अपने में दीनता न लावे।
. शूर–वीर हो, परंतु बढ़–बढ़कर बातें न करे।
. दान करे, परंतु अपात्र को न दे।
. साहसी रहे, किंतु निष्ठुर न बने।
. दुष्टों के साथ मेलमिलाप न करे।
. भाई–बंधुओं के साथ कलह न करे।
. जो राजभक्त न हो, उसे गुप्तचर न बनावे।
. किसी को कष्ट पहुंचाये बिना अपना कार्य करे।
. अपनी मंशा दुष्टों से न कहे।
. अपने गुणों का स्वयं वर्णन न करे।
. श्रेष्ठ मनुष्यों का धन न छीने।
. नीच आचरण के मनुष्यों का सहारा न ले।
. अपराध की पूरी जांच किये बिना दंड न दे।
. गुप्त मंत्रणा प्रकट न करे।
. लोभियों को धन न दे।
. जिसने कभी अपकार किया हो, उस पर विश्वास न करे।
. ईर्ष्या–रहित होकर अपनी पत्नी की रक्षा करे।
. स्वयं शुद्ध रहे, परंतु किसी से घृणा न करे।
. स्त्रियों का अधिक सेवन न करे।
. शुद्ध तथा स्वादिष्ट भोजन करे, परंतु अहितकर भोजन न करे।
. उद्दंडता छोड़कर माननीयों का सत्कार करे।
. निष्कपट भाव से गुरुजनों की सेवा करे।
. दंभहीन होकर देव पूजन करे।
. अनिंदित उपाय से धन पाने की इच्छा करे।

. हठ छोड़कर प्रीति का पालन करे।
. कार्यकुशल हो, परंतु अवसर का ज्ञान रखे।
. अपना पिंड छुड़ाने के लिए किसी को दिलासा न दे।
. किसी पर कृपा करते समय उस पर आक्षेप न करे।
. बिना जाने किसी पर प्रहार न करे।
. शत्रुओं को मारकर शोक न करे।
. अकस्मात किसी पर क्रोध न करे।
. कोमल हो, परंतु अपकार करने वाले पर नहीं (अध्याय)।

मीमांसा

उक्त सूची में अधिकतम गुण सभी मनुष्यों के लिए उपयोगी हैं।

. राजा के कर्तव्य तथा उसके लिए एक पुरोहित–महामंत्री की आवश्यकता

युधिष्ठिर ने पूछा–पितामह! राजा कैसा आचरण करे जिससे वह चिंता में न पड़े तथा धर्म के विषय में अपराधी न बने? भीष्म ने कहा–मैं संक्षेप में कहूंगा। विस्तार में कहा जाय तो कहीं अंत नहीं है। वेदज्ञ तथा सदाचारी ब्राह्मण का आदर करे। राजा को चाहिए कि वह अपने स्वभाव में सरलता रखे, धैर्य रखे, विवेक से सत्य ग्रहण करे और काम–क्रोध का त्याग करे। काम–क्रोध के अधीन होकर न धन मिलता है न धर्म रह जाता है। लोभी और मूर्ख मनुष्य को काम और अर्थ के साधन में न लगावे। निर्लोभी और बुद्धिमान मनुष्य ही कार्य सिद्ध कर सकते हैं। जो काम और क्रोध के अधीन है और व्यवहार में अकुशल है, यदि ऐसे मनुष्य को अर्थसंग्रह में लगाया जायगा, तो उससे प्रजा को कष्ट होगा। राजा को प्रजा से उसकी आमदनी का छठां भाग लेकर तथा उचित शुल्क एवं कर लेकर धन–संग्रह करना चाहिए। संग्रहीत धन से राजा प्रजा की सब प्रकार सेवा करे। जो राजा प्रजा से अधिक धन लेता है वह अपने ही हाथों अपना विनाश करता है। जैसे दूध देने वाली गाय का थन काट ले, तो वह दूध नहीं पा सकता, वैसे यदि राजा प्रजा के धन का शोषण करता है, तो राष्ट्र नष्ट होता है। जैसे माता स्वस्थ रहकर ही बच्चे को दूध पिला सकती है, वैसे प्रजा की संपन्नता से राष्ट्र समृद्ध होगा। तुम माली के समान बनो, कोयला बनाने वाले के समान नहीं। माली वृक्षों को सींच–पालकर उनसे फूल–फल लेता है,

परंतु कोयला बनाने वाला पेड़ों को जड़ से काटकर उन्हें जला देता है। धनी ब्राह्मण से भी धन न ले। अर्थात ब्राह्मण कर-मुक्त होता है, इन्कम टैक्स-फ्री होता है। ब्राह्मणों को धन देकर उनकी सेवा करे। राजा का सबसे बड़ा धर्म है प्रजा की सेवा तथा रक्षा करना। प्रजा निर्भय होकर अपना काम करे, ऐसा शासन होना चाहिए।

राजा के लिए एक सदाचारी तथा विद्वान पुरोहित चाहिए। राजा पहले उत्तम पुरोहित चुन ले, उसके बाद अपना राज्याभिषेक करावे। पुरोहित वेद-शास्त्र का विद्वान, तपस्वी, सदाचारी, धर्मपरायण, संतुष्ट तथा अलोलुप होना चाहिए। ऐसे पुरोहित की बातें राजा अहंकार-शून्य होकर सुने और आचरण करे। जो संयमी तथा विनम्र पुरोहित होता है वह अपने अमृतमय उपदेशों से राजा को अच्छा सुझाव देता है। साधारण अवस्था में ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध पांचों विषय आनंदप्रद होते हैं, भयभीत अवस्था में नहीं। राजा अपने राष्ट्र में शासन की ऐसी व्यवस्था करे कि प्रजा निर्भय होकर आनंद से रह सके तथा अपना काम कर सके।

पुरोहित बहुश्रुत एवं विद्वान होना चाहिए। तिहत्तरवें तथा चौहत्तरवें अध्याय में ब्राह्मण-क्षत्रिय के परस्पर मेल पर बल दिया गया है। इसके लिए पुरूरवा और वायु का तथा पुरूरवा और कश्यप का संवाद दिया गया। जब ब्राह्मण तथा क्षत्रिय में मेल नहीं रहता तब शासन शिथिल हो जाता है और प्रजा दुखी हो जाती है, पापाचार बढ़ जाता है। तब रुद्रदेव प्रकट होकर साधु-असाधु सब का संहार करते हैं। पुरूरवा ने पूछा-रुद्रदेव कहां से आते हैं? संसार में तो प्राणी ही प्राणी को मारते हैं। ये रुद्रदेव किनसे उत्पन्न होते हैं?

कश्यप ने कहा-रुद्रदेव मनुष्य के हृदय में आत्मा रूप में निवास करते हैं और समय आने पर अपने और दूसरे की देहों का नाश करते हैं- *"आत्मा रुद्रो हृदये मानवानां स्वं स्वं देहं परदेहं च हन्ति* (,)। मनुष्य राग-द्वेष ग्रस्त होकर अपने हृदय में क्रोध रूपी रुद्र को प्रकट करता है। वह क्रोध सबका विनाश करता है। ब्राह्मण तथा क्षत्रिय के मेलमिलाप के लिए मुचुकुंद और कुबेर के संवाद की भी कल्पना की गयी है। सबका अर्थ यही है कि राजा और पुरोहित में एक मत होना चाहिए (अध्याय -)।

मीमांसा

धर्म और राजनीति का जो निष्णात विद्वान, संयमी, धीरमति तथा अलोलुप हो, वह ब्राह्मण है और ऐसे ब्राह्मण को पुरोहित-अगुआ एवं मंत्री बनाना राजा

का परम कर्तव्य है। तभी राज्य चल सकता है। वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं–"ये दोनों (राजा और पुरोहित एवं मंत्री) एक दूसरे के अनुकूल रहकर ही महती श्री का संवर्धन कर सकते हैं। इनके आपसी विरोध से सब कुछ सप्रमूढ़ हो जाता है। यहां उस संधिपुराण का उल्लेख है जिसका वर्णन पाणिनि ने *मिश्रं चानुपस्वर्गमसन्धौ* (, ,) सूत्र में किया है जिसके अनुसार ब्राह्मण मंत्री और क्षत्रिय राजा एक दूसरे से मिलकर रहते थे। कौटिल्य के ग्रंथ में ब्रह्म–क्षत्र की संधि का जो परंपरागत अर्थ था, वह काशिका के उदाहरण में मिलता है। (*ब्राह्मणमिश्रो राजा। ब्राह्मणैः सह संहिता एकार्थ्यमापन्नः*) दोनों के लिए इस पुराण संधि का पालन आवश्यक था। उनके उदाहरण मगधराज अजातशत्रु और उनके महामंत्री वर्षकार, कोशलराज विडुभ के महामंत्री दीर्घचारायण, वत्सराज उदयन के महामंत्री यौगंधरायण, मगधाधिपति चंद्रगुप्त मौर्य के मंत्री आचार्य चाणक्य, अशोक के राधगुप्त, अवंतिराज महापालक के महामंत्री आचार्य पिशुन, चंडप्रद्योत के भारत रोहक, अवंतिराज अंशुमुख के आचार्य घोटमुख, कोसलराज परंतप के कणिक भारद्वाज, पांचालराज ब्रह्मदत्त के आचार्य बाभ्रव्य आदि नामों से मिलते हैं। यदि ब्राह्मण रूपी ब्रह्मवृक्ष की रक्षा की जाय तो वह मधु और सुवर्ण की वृष्टि करता है और यदि उसकी रक्षा न की जाय तो वह आंसुओं से रोता है। पुरूरवा–कश्यप संवाद रूप में ब्रह्म और क्षत्र का वर्णन किया गया है और पाप और पुण्य का सुंदर चित्र खींचा गया है।"

. ब्राह्मण–लक्षण, राजधर्म, मृत्यु और ब्रह्मत्व तथा विश्वास–अविश्वास

युधिष्ठिर ने कहा–पितामह! मैंने सुख पाने के लिए राज्य को कभी नहीं चाहा। मैंने तो धर्म के लिए ही राज्य को चाहा; परंतु मालूम होता है कि इसमें धर्म नहीं है। जिसमें धर्म नहीं, उस राज्य से क्या लेना–देना? अतः अब मैं वन में जाकर पूर्ण अहिंसक हो तथा फल–कंद का आहार करते हुए तप करूंगा।

भीष्म ने कहा–युधिष्ठिर! तुम्हारी बुद्धि कोमल है; परंतु केवल दया और कोमलता से राज्य नहीं चलाया जा सकता है। वन में जाने से तुम्हें लोग कायर कहेंगे, अतएव तुम बाप–दादों के अनुसार प्रजापालन करो। इसके बाद भीष्म ने राज्य शासन की महत्ता बतायी।

छिहत्तर ( )वें अध्याय में आता है कि ब्राह्मण की परख क्या है? भीष्म कहते हैं–जो वेदों का अध्ययन करता हो, अपने वर्णोचित कर्म में निरत हो,

---

. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**

सद्गुणों से संपन्न तथा सर्वत्र समता का भाव रखता हो वह सच्चा ब्राह्मण है। जो ब्राह्मण कर्म से भ्रष्ट है, वेद विहीन है, बुरे कर्मों में लगा है, ऐसा ब्राह्मण शूद्र के समान है। न्यायालय में या कहीं भी लोगों को बुलाकर लाने-ले जाने वाले, वेतन लेकर देवमंदिर में पूजा करने वाले, नक्षत्रविद्या द्वारा जीविका चलाने वाले, ग्राम का पुरोहित, विदेश जाने वाले ये ब्राह्मण चांडाल के तुल्य हैं (, -)। धर्मात्मा राजा को चाहिए कि इनसे कर ले और बेगार करावे। जो ब्राह्मण ऋत्विज, राजपुरोहित, मंत्री, राजदूत तथा संदेशवाहक है, वह क्षत्रिय के समान है। जो ब्राह्मण घुड़सवार, हाथी-सवार, रथी तथा पैदल सिपाही का काम करता है, वह वैश्य है। ऐसे ब्राह्मणों से राजा कर ले। जो ब्राह्मणत्व से अलग है, राजा उसे निस्संकोच ब्राह्मणों की श्रेणी से अलग कर दे और उनसे कर ले।

सतहत्तर ( )वें अध्याय में केकय नरेश ने अपने राज्य की सुंदर व्यवस्था बतायी है और जो श्लोक छांदोग्य उपनिषद में है, उसे ही उद्धृत कर दिया है– *न मे स्तनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः*...। मेरे जनपद में न चोर हैं, न कंजूस हैं, न शराबी हैं इत्यादि।

अठहत्तर ( )वें अध्याय में ब्राह्मण आपत्तिकाल में वैश्यवृत्ति से अपना निर्वाह कर सकता है, बताया गया है। लुटेरों से अपनी रक्षा करने के लिए सभी वर्ग के लोगों को हथियार रखने की छूट दी गयी है। इस अध्याय के अंत में बताया गया है कि किसी वर्ग का मनुष्य हो, जो आपत्तिकाल में रक्षा करे वह सम्मान का पात्र है। उन्यासी ( )वें अध्याय में यज्ञ, तप आदि का लक्षण बताकर अंत में एक मार्मिक बात बतायी गयी है–"सारी कुटिलता मृत्युस्थान है और सरलता ब्रह्मत्वप्राप्ति है। इतना ही ज्ञान का विषय है। फिर व्यर्थ बकवाद क्यों करना।"

अस्सी ( )वें अध्याय में युधिष्ठिर द्वारा यह बात उठायी गयी है कि सहायक के बिना काम नहीं हो सकता, तो सहायक कैसा चुना जाय, और उन पर विश्वास कैसे करे या न करे? भीष्म ने कहा–बुरा मनुष्य भला हो जाता है और भला बुरा हो जाता है। शत्रु मित्र हो जाता है और मित्र शत्रु हो जाता है; क्योंकि मनुष्य का मन सदा एक-सा नहीं रहता। अतएव अपना खास काम अपनी आंखों के सामने ही करवाना चाहिए। भावुक होकर विश्वास करना धोखा खाना है, और सब पर अविश्वास करना अपने पैर में कुल्हाड़ी मारना है। राजा को कुछ चुने हुए लोगों पर विश्वास करना चाहिए, परंतु उनसे सावधान भी रहना

. **सर्वे जिह्मं मृत्युपदमार्जवं ब्रह्मणः पदम्।**
एतावाञ्ज्ञानविषयः किं प्रलापः करिष्यति ,

चाहिए। "एक कार्य के लिए सदैव एक ही व्यक्ति को नियुक्त करना चाहिए, दो या तीन को नहीं; क्योंकि वे परस्पर एक दूसरे को सहन नहीं कर पाते। एक कार्य में नियुक्त हुए अनेक व्यक्तियों में परस्पर मतभेद हो ही जाता है।"

जो कीर्ति को प्रधान मानता है, मर्यादा में रहता है, जो समर्थशाली पुरुषों से द्वेष नहीं करता, जो कामना, भय, लोभ तथा क्रोध से धर्म नहीं त्यागता, जिसमें कार्य कुशलता तथा आवश्यकतानुसार बातचीत करने की योग्यता है, उसे अपना प्रधानमंत्री बनाना चाहिए। कुटुंबी तथा सहायकों से भी भय रखना चाहिए। परंतु उनके बिना काम भी नहीं चलता। अतएव उन पर विश्वास करे तथा सावधान भी रहे (अध्याय –)।

. देवर्षि नारद का श्रीकृष्ण को परिवार सम्हालने की सीख देना

युधिष्ठिर ने पूछा–पितामह! यदि परिवार में दो दल हो जायं, तो एक का आदर करने से दूसरा रुष्ट होता है। ऐसी दशा में मित्र भी शत्रु बन जाते हैं। ऐसी अवस्था में उनमें कैसे समन्वय किया जाय?

भीष्म ने कहा–इस संबंध में पुराना इतिहास है जो देवर्षि नारद तथा श्रीकृष्ण के संवाद रूप में प्रचलित है। मनीषीजन इसका उदाहरण दिया करते हैं। वह इस प्रकार है–

एक समय श्रीकृष्ण ने नारद से कहा–देवर्षि! जो मनुष्य सुहृद न हो, सुहृद होते हुए समझदार न हो, सुहृद और समझदार होते हुए जिसने मन को वश में न किया हो, तो उसे अपनी गुप्त बात नहीं बताना चाहिए। आप मेरे सुहृद एवं मित्र हैं, समझदार हैं और अपने मन पर विजयी हैं, इसलिए मैं अपनी व्यथा आपसे कहता हूं। मैं आपके सौहार्द पर विश्वास रखकर आपसे अपनी बात कहना चाहता हूं। मनुष्य किसी व्यक्ति में बुद्धि-शक्ति देखकर ही उससे कुछ जिज्ञासा करता है।

देवर्षि! मैं अपनी प्रभुता प्रदर्शित करके अपने जाति–भाइयों को अपना दास नहीं बनाना चाहता। मुझे जो भोग–पदार्थ मिलता है, उसका आधा भाग ही अपने उपयोग में लेता हूं, शेष परिवार वालों के लिए छोड़ देता हूं और उनकी

. **नैव द्वौ न त्रयः कार्या न मृष्येरन् परस्परम् ।**
एकार्थे ह्येव भूतानां भेदो भवति सर्वदा ,

कटु बातें सुनकर निर्विकार भाव से सह लेता हूं। जैसे आग जलाने के लिए दो काठ रगड़ा जाता है, वैसे इन कुटुंबियों के कटु वचन मेरे हृदय को निरंतर मथते और जलाते रहते हैं। मेरे बड़े भाई बलराम अपने बल के घमंड में सदैव चूर रहते हैं और छोटे भाई गद अपनी सुकुमारता में मस्त रहते हैं, अतएव परिश्रम करने से दूर भागते हैं। रहा, मेरा पुत्र प्रद्युम्न, वह अपने रूप-सौंदर्य के मोह में ही सदा मतवाला बना रहता है। ये सब मेरे अच्छे सहायक होते हुए, मैं असहाय हूं।

नारद जी! अंधक और वृष्णि वंश में अन्य भी बहुत-से वीर पुरुष हैं, जो सौभाग्यशाली, बलवान तथा कठिन पराक्रमी हैं। वे सदैव उद्योगशील हैं। ये जिनके पक्ष में चले जायं, वह विजयी हो जाय। परंतु वृष्णिवंशी आहुक तथा अंधकवंशी अक्रूर ने आपस में वैमनस्य रखकर मेरा मार्ग ऐसा रोक दिया है कि मैं उनमें से किसी एक का पक्ष नहीं ले सकता। आहुक और अक्रूर जैसे योग्य व्यक्ति जिसके पास न हों, वह असमर्थ ही है, और इन-जैसे लड़ैत जिसके पास हों उसका जीवन दुख से भरा ही समझिए। जैसे दो जुआड़ियों की माता एक की विजय चाहती है, परंतु दूसरे की हार नहीं चाहती, वैसे मैं आहुक और अक्रूर में से एक की विजय चाहता हूं, परंतु दूसरे की हार नहीं चाहता हूं। नारद जी! इस प्रकार मैं दोनों पक्षों का हित चाहता हूं और दोनों पक्षों से कष्ट पाता हूं। ऐसी दशा में मेरे परिवार में कैसे सबका भला हो, मैं कैसा सबसे व्यवहार करूं जिससे सबका कल्याण हो, यह मुझे बताइए।

नारद ने कहा-श्रीकृष्ण! विपत्ति दो प्रकार की होती है, एक बाहरी और दूसरी भीतरी। जो अपनी ही करतूति का परिणाम है, वह भीतरी है और जिसका निमित्त दूसरा हो, वह बाहरी है। अक्रूर और आहुक द्वारा उत्पन्न हुई जो आपकी विपत्ति है, यह भीतरी है। यह अपनी ही करतूतों से पैदा हुई है। आपने जिनके नाम गिनाये हैं, ये आपके ही वंश के हैं, आपके ही भाई-बिरादर हैं। आपने अपने मामा कंस को मारकर राज्य प्राप्त किया था। उसे किसी कारण-वश या अपनी इच्छा से अथवा कटुवचन के डर से उग्रसेन को ही दे दिया। इस समय उनका राज्य तथा ऐश्वर्य दृढ़मूल हो गया है। जाति के लोग भी उग्रसेन के सहायक हैं। अतएव उगले हुए भोजन की तरह उसे आप पुनः नहीं ले सकते। राज-ऐश्वर्य उग्रसेन तथा अक्रूर के अधिकार में है, उसे आप शक्तिशाली होकर भी वापस नहीं ले सकते। वापस लेने में भयंकर फूट का भय है। यदि राज्य को आप वापस लेना चाहें तो इसमें भयंकर युद्ध होगा और भारी मात्रा में जन-धन का संहार होगा। इसलिए "श्रीकृष्ण! आप ऐसा कीजिए कि एक ऐसा कोमल

शस्त्र लेकर जो लोहे का न बना हो उसका परिमार्जन–अनुमार्जन करके अपने परिवार वालों की जीभ उखाड़ लीजिए, उन्हें मौन कर दीजिए, जिससे पुनः कलह न हो।"

कृष्ण! भोजन कराना, आदर–सत्कार करना, सहनशीलता, सरलता तथा कोमलता का व्यवहार करना बिना लोहे का बना शस्त्र है। जब अपने लोग आपको कड़वी तथा ओछी बात कहना चाहें, तब आप उनसे मीठे वचन बोलकर उनके हृदय, वाणी तथा मन को शांत कर दें। जो महापुरुष नहीं है, जिसने अपने मन को वश में नहीं किया है और जो सहायकों से संपन्न नहीं है, वह कोई बड़ा काम नहीं कर सकता। आप में यह सब है; अतएव आप ही इस यदुवंश को सम्हाल सकते हैं। समतल भूमि पर भरी गाड़ी साधारण बैल भी खींच ले जाते हैं, किंतु ऊबड़–खाबड़ भूमि पर भरी गाड़ी बलवान बैल ही खींच सकते हैं। आप जैसे बलवान पुरुष ही इस ऊबड़–खाबड़ यदुवंश को सम्हाल सकते हैं।

कृष्ण! आप इस यदुवंश के मुखिया हैं। यदि यदुवंश में फूट हो गयी, तो इसका विनाश हो जायगा। अतएव आप ऐसा करें कि आपको पाकर इस यदुवंश का विनाश न हो।" जो बुद्धिमान, क्षमाशील, इन्द्रिय–मन पर विजयी और धन का त्यागी है, वही किसी संघ, गण या परिवार को अपनी आज्ञा में चला सकता है। अपने लोगों की जिससे उन्नति हो, धन, यश तथा आयु की वृद्धि हो, कुटुंबियों में से किसी का विनाश न हो, वैसा आप कीजिए। आपसे कोई ज्ञान तथा कला छिपी नहीं है। आप सब जानते हैं। कृष्ण! कुकुर, भोज, अंधक और वृष्णिवंश के सभी यादव आपसे प्रेम रखते हैं। दूसरे लोग तथा राजे–महाराजे भी आपसे प्रेम रखते हैं। और की बात ही क्या, बड़े–बड़े ऋषि–मुनि आपकी बुद्धि का सहारा लेते हैं। आप सभी प्राणियों के गुरु हैं तथा भूत, वर्तमान तथा भविष्य को जानते हैं। आप यदुकुल के तिलक हैं। आपका ही आश्रय लेकर यदुकुल सुखी रह सकता है (अध्याय)।

मीमांसा

यह तीस श्लोकों का छोटा अध्याय अत्यंत मार्मिक विषय उपस्थित करता है जो परिवार, संघ, पार्टी, कंपनी तथा किसी भी समूह को चलाने का अचूक

. **अनायसेन शस्त्रेण मृदुना हृदयच्छिदा।**
जिह्वामुद्धर सर्वेषां परिमृज्यानुमृज्य च ,

. **भेदाद् विनाशः संघानां संघमुख्योऽसि केशव।**
यथा त्वां प्राप्य नोत्सीदेदयं संघस्तथा कुरु ,

उपाय है। जो धन का त्यागी हो, विनम्र हो, साथियों के कटु वचन निर्विकार भाव से सह लेता हो, स्वयं सदा मीठा बोलता हो और अपने मन-इंद्रियों पर विजयी हो, वही किसी समाज एवं समूह को चला सकता है।

इस अध्याय का लेखक बहुत समझदार है, परंतु यहां बेमौके इसे जड़ दिया है। महाभारत युद्ध के छत्तीस वर्ष बाद यदुकुल का विनाश हुआ है, अतएव नारद-कृष्ण का संवाद रूप उक्त अध्याय का विषय भीष्म की मृत्यु के कम-से-कम पैंतीस वर्ष बाद आना चाहिए। भीष्म अपनी मृत्यु के पैंतीस वर्ष के बाद की बात कैसे कह सकते हैं? अतः किसी बुद्धिमान लेखक द्वारा यह ज्योतिर्मय उपादेय विषय-वस्तु अनवस्थान ठोंक दी गयी है, परंतु है अत्यंत मार्मिक और अत्यंत प्रेरणाप्रद।

. राजा के सहायक मंत्री कैसे हों तथा राजा कैसे शासन करे ?

भीष्म ने कहा-जो व्यक्ति राजा के धन की रक्षा करे उसकी रक्षा राजा को स्वयं करना चाहिए। यदि मंत्री राजा के खजाने से धन का अपहरण करता हो, ऐसी स्थिति में राजा का कोई सेवक यह बात राजा को बतावे, तो राजा इसे एकांत में सुने और सेवक की पूरी रक्षा रखे, क्योंकि ऐसे व्यक्ति को मंत्री मरवा देता है जिससे उसका भंडाफोड़ न हो जाय। मंत्री की भ्रष्टता को बताने वाले की रक्षा यदि राजा न करे, तो वह बेचारा बेमौत मारा जाता है। इस विषय में कालकवृक्षीय मुनि ने कोसल नरेश को उपदेश दिया था।

कोसलनरेश क्षेमदर्शी के राज्य में कालकवृक्षीय मुनि ने पिंजड़े में एक कौए को बांधकर बारंबार भ्रमण किया था। मुनि राज्य के लोगों से कहते थे कि पिंजड़े में बैठा यह कौआ भूत, वर्तमान और भविष्य का सब समाचार बता देता है। इस बहाने मुनि ने राजा के देश में बारंबार घूमकर राजा के मंत्रियों, अधिकारियों और कर्मचारियों की भ्रष्टता को समझ लिया था। मुनि ने राजा क्षेमदर्शी से मिलकर एकांत में कहा-मैं आपके पिता का मित्र हूं। इसलिए मैं आपसे विशेष प्रेम रखता हूं और इसीलिए मैंने आपके राज्य में घूमकर सरकारी तंत्र का सब पता लगा लिया है। अनेक मंत्री, अधिकारी तथा कर्मचारी आपके राजकोष का मनमानी अपहरण करते हैं।

राजा क्षेमदर्शी ने कहा-ब्रह्मण! मैं आपकी बातों को ध्यान से सुनूंगा तथा उस पर अमल करूंगा। मुनि ने कहा-जिन्हें कहीं सहारा नहीं मिलता, वे राजा

के सेवक होते हैं, अतएव उनकी जीवन वृत्ति को अगतिकगति कहा जाता है। राजनीतिक लोग कहते हैं कि जिसका राजाओं के साथ मेलजोल हो गया उसकी मानो विषधर सर्प के साथ संगति हो गयी। राजा के जहां कई मित्र होते हैं, वहां कई शत्रु होते हैं। राजा के आधार में जीविका चलाने वालों को उन सबसे भय होता है। स्वयं राजा से ही उन्हें क्षण–क्षण भय रहता है। जो राजा के पास रहे वह बहुत सावधान रहे। आग और राजा का सेवन बड़ी सावधानी से करना चाहिए। राजनीति नदी है, और राजकीय मनुष्य उसमें मगर, मत्स्य एवं ग्राह हैं। जैसे हिमालय की कंदराओं में ठूंठ, पत्थर और कांटे होते हैं और बाघ–सिंह का निवास होता है, इसलिए वहां मनुष्य का पहुंचना तथा रहना अत्यंत कठिन है, वैसे राजदरबार में भले मनुष्य का रहना कठिन है, क्योंकि वहां अधिक कुटिलों का निवास होता है। अंधकार–दुर्ग को प्रकाश से और जल–दुर्ग को नाव से पार किया जाता है, परंतु राजा रूपी दुर्ग से पार पाने का उपाय विद्वान भी नहीं जानते। आपका राज्य गहन अंधकार से ढक गया है, इसलिए दुखपूर्ण हो गया है। आप स्वयं इस पर विश्वास नहीं कर सकते, तब मैं क्या विश्वास करूंगा?

जब एक प्रकार का दोष बहुत लोगों पर सिद्ध होता है, तब वे सब अपराधी एकजुट होकर सत्य का ही लोप करने पर डट जाते हैं। अतएव हे राजन! मैं आपको एकांत में सावधान करता हूं कि आप इन अपराधियों को एक–एक कर ठिकाने लगावें। आप अपने राज–काज को केवल मंत्रियों के बल पर न रखकर, स्वयं इसकी देखरेख करें।

युधिष्ठिर ने पूछा–पितामह! राजा के सभासद, सहायक, सुहृद, परिच्छद (सेनापति आदि) तथा मंत्री कैसे होने चाहिए?

भीष्म ने कहा–जो लज्जाशील, जितेंद्रिय, सत्यवादी, सरल तथा किसी विषय पर भलीभांति प्रवचन कर सके, ऐसे लोग सभासद होने योग्य हैं। मंत्री, योद्धा, विद्वान, आत्मसंतुष्ट और उत्साही लोगों को अपना सहायक बनाने वाला राजा सफल होता है। सुहृद एवं मित्र वह है जो कुलीन, सम्मानित, सेवापरायण तथा उत्साही हो, और राजा की हर स्थिति में उसका अनुसरण करने वाला हो। सेनापति उसे बनाना चाहिए जो उत्तम कुल में उत्पन्न हो, अपने ही देश में जन्मा हो, इसके साथ बुद्धिमान, रूपवान, बहुज्ञ, निर्भय और राजा में अनुरक्त हो। राजा को चाहिए कि उक्त सभी लोगों को उदारतापूर्वक धन–सम्मान देकर प्रसन्न रखे, फिर वे साथ नहीं छोड़ेंगे।

जिनके साथ किसी प्रकार का संबंध हो, जो अच्छे कुल में उत्पन्न, विश्वास–पात्र, स्वदेशी, घूस न लेने वाले, और व्यभिचार क्षेत्र से रहित हों, जिनकी पूरी

परीक्षा कर ली गयी हो, जो विद्वान हों, कई पीढ़ियों से राजकीय सेवा करने वाले तथा विनम्र हों, ऐसे लोग मंत्री बनाने योग्य होते हैं। राज्य का मूल गुप्तचर है और गुप्तचर का सार है गुप्त मंत्रणा। मंत्री लोग तो अपनी जीविका के लिए ही राजा का अनुसरण करते हैं। जो मद, क्रोध, मान, ईर्ष्या से रहित हैं और जो कायिक, वाचिक, मानसिक, कर्मकृत और संकेतजनित पांचों प्रकार के छलों को लांघकर ऊपर उठ गये हैं, ऐसे मंत्रियों के साथ राजा गुप्त मंत्रणा करे। जहां गुप्त मंत्रणा की जाय, वहां या उसके आस-पास, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, किसी तरह बौने, कुबड़े, दुबले, लंगड़े, अंधे, गूंगे, स्त्री और हिजड़े न आने पावें, भवन के ऊपरी तल पर या एकांत स्थान में वाणी और शरीर के सारे दोषों का त्यागकर भावी कार्य के लिए गुप्त विचार करना चाहिए।

भीष्म ने कहा–मनस्वी व्यक्ति इंद्र और बृहस्पति के संवाद रूप में एक प्राचीन इतिहास का उदाहरण दिया करते हैं। इंद्र ने पूछा–ब्रह्मन! वह कौन वस्तु है जिसका नाम एक ही पद का है और जिसका पूर्ण आचरण करने वाला मनुष्य सभी प्राणियों का प्रिय होकर महान सुकीर्ति प्राप्त करता है? बृहस्पति ने कहा–वह है मीठे वचन बोलना। यही एक वस्तु सभी प्राणियों के लिए सुखदायक है। जो इसका आचरण करता है, वह सबका प्रिय होता है। जिस मनुष्य की भौंहे हर समय टेढ़ी रहती हैं, जो किसी से नहीं बोलता, वह शांतिभाव न अपनाने के कारण सबसे तिरस्कृत होता है। जो सबको देखकर पहले बात करता है और सबसे मुस्कराकर बोलता है, उससे सब प्रसन्न रहते हैं। दाल-शाक आदि व्यंजन के बिना भोजन प्रिय नहीं होता, वैसे मीठी वाणी के बिना दान भी लोगों को प्रसन्न नहीं करता। मधुर वाणी से सबको वश में किया जा सकता है। अतएव यदि राजा को किसी को दंड देना है, तो भी उससे मीठा ही बोले। ऐसा करके मनुष्य प्रयोजन पूर्ण कर लेता है और दूसरे लोग उससे उद्विग्न नहीं होते। यदि पूर्णरूपेण मीठे वचन बोला जाय और सदैव इसी का सेवन किया जाय, तो इसके समान वशीकरण साधन संसार में अन्य नहीं है। युधिष्ठिर! तुम सदैव मीठे वचनों का प्रयोग करो।

जो राजा बाहर-भीतर पवित्र रहकर शुद्ध भाव से प्रजापालन करता है, वह धर्म और कीर्ति प्राप्त करता है, उसके लोक-परलोक दोनों सुखद होते हैं।

युधिष्ठिर ने कहा–किसी एक मनुष्य में सारे सद्‌गुणों का मिलना कठिन दिखता है। भीष्म ने कहा–तुम्हारी बात सच है। राजा को चाहिए कि वेदों का विद्वान, निर्भीक, बाहर-भीतर शुद्ध चार स्नातक ब्राह्मण; शरीर से बलवान शस्त्रधारी आठ क्षत्रिय, धन-धान्य से संपन्न इक्कीस वैश्य; पवित्र आचार-विचार

वाले विनयशील तीन शूद्र और आठ गुणों से संपन्न तथा पुराणविद्या जानने वाला एक सूत जाति का मनुष्य, इन सबका एक मंत्रिमंडल बनावे। सूत की अवस्था पचास वर्ष की हो। इसके साथ निर्भीक, दोषदृष्टि–रहित, श्रुति–स्मृतियों के ज्ञान से संपन्न, विनयशील, समदर्शी, वादी–प्रतिवादी के मामलों का निपटारा करने में समर्थ, लोभरहित और सात दुर्व्यसनों से दूर रहने वाले हों, ऐसे आठ मंत्रियों के बीच में राजा गुप्त मंत्रणा करे। जो इन सबकी राय से सही पड़े उसका प्रचार जनता में करावे।

राजा आपत्तिकाल में भी किसी राजा के दूत की हत्या न करे। दूत तो अपने स्वामी–राजा की बातें ज्यों–की–त्यों कहता है। इसलिए वह अपराधी नहीं है। राजदूत को इन सात गुणों से संपन्न होना चाहिए–वह कुलीन, शीलवान, बोलने में तेज, चतुर, प्रियभाषी, अपने राजा के संदेश को ज्यों–का–त्यों कह देने वाला तथा स्मरण–शक्ति संपन्न हो। राजा के द्वारपाल तथा अंगरक्षक में भी ये गुण होना चाहिए।

वही मंत्री उत्तम माना जाता है जो संधि–विग्रह के समय को जानने वाला है, धर्मशास्त्रों के तत्त्व को जानता है, बुद्धिमान, धीर, लज्जावान, रहस्य को गुप्त रखने वाला, कुलीन, साहसी तथा शुद्ध हृदय वाला है। इसके साथ उसे युद्ध के लिए व्यूह (मोर्चाबंदी) रचने का ज्ञान हो। वह शस्त्र चलाने का भी ज्ञाता हो, पराक्रमी, ठंडी–गरमी, आंधी–वर्षा के कष्ट को सहने वाला हो और धैर्यवान तथा शत्रु पक्ष के छिद्रों का ज्ञाता हो। राजा दूसरों के मन में अपने ऊपर विश्वास पैदा करे, परंतु स्वयं किसी पर विश्वास न करे। राजा को अपने पुत्रों पर भी पूरा विश्वास नहीं करना चाहिए।

इसके बाद राजा के रहने योग्य दुर्ग का वर्णन है। राजा प्रजा का पालन करे और साधना मार्ग में चलने वाले आश्रमवासियों की सेवा में धन दे। इस प्रकार चौरासी ( )वें अध्याय से एक सौ तीन ( )वें अध्याय तक राजकाज के गुण–दोषों का सविस्तार वर्णन है (अध्याय –)।

. **सेवा के लिए तैयार रहना, कही जाने वाली बात को सुनना, उसे समझना, उसे याद रखना, परिणाम पर विचार रखना, कार्य सफल न होने पर क्या करना चाहिए इस प्रकार वितर्क करना, शिल्प और व्यवहार का ज्ञाता होना, तत्त्व का बोध होना–ये आठ गुण पौराणिक सूत में होने चाहिए।**

. **शिकार, शराब, जुआबाजी, परस्त्री गमन, ये चार व्यसन कामजनित और मारना, गाली देना तथा दूसरे की वस्तु को खराब कर देना, ये तीन क्रोधजनित व्यसन हैं। ये सब मिलकर सात दुर्व्यसन हैं।**